।। श्री ।।

।। श्रीपरांकुशपरकालयतिवरवरवरमुनिभ्यो नमः ।।

।। श्रीवादिभीकरमहागुरवे नमः।।

श्रीवरवरमुनि स्वामीजी विरचित

उपदेशरत्नमाला

प्रकाशक : श्रीप्रतिवादि भयंकर मठ, कांचिपुरम्

।। श्रीमद्वरवरमुनयेनम: ।।

श्रीवरवरमुनि स्वामीजी, कांचिपुरम्

एक बार श्रीवरवरमुनि स्वामीजी के मठ के सेवा में किसी व्यक्ति ने सामग्री लाकर अर्पण किया। स्वामीजी को मालूम हुआ की सामग्री का अनुचित मार्ग से उसका उपार्जन किया गया है इसलिये उसे वापस कर दिया। कोई भी सामग्री / धन कैंकर्य के लिये आये तो ध्यान रखना चाहिये की उसका उपार्जन सही तरीके से हुआ हो ।

- श्रीवरवरमुनि स्वामीजी के जीवन चरित्र से

।। श्रीमद्वरवरमुनयेनमः ।।

श्रीवरवरमुनि स्वामीजी, भूतपुरी

एक श्रीवैष्णव महिला श्रीवरवरमुनि स्वामीजी के मठ में सब्जि साफ करती थी, लेकिन पूर्ण रुप से भक्ति-भाव-निष्ठा उसमें नहीं रहने के कारण स्वामीजी ने उसे मठ में से निकाल दिया । स्वामीजी के अनुसार कैंकर्य करनेवालों में पूर्ण रुप से समर्पण भाव और निष्ठा रहना आवश्यक है ।

- श्रीवरवरमुनि स्वामीजी के जीवन चरित्र से

।। श्रीमद्वरवरमुनयेनम: ।।

श्रीवरवरमुनि स्वामीजी चरण पादुका,
श्रीमणवाळमामुनि मठ, श्रीरंगम

अर्चिरादि मार्ग से परमपद जानेवाला चेतन जब इस प्रकृति मंडल को पार कर और विरजा नदी प्राप्त कर वहां स्नान करेगा, तब उसका सूक्ष्मशरीर निकल जायेगा; और फिर विरजा के उस पार विराजमान ''अमानव'' नामक दिव्यपुरुष उसका स्पर्श करेगा; जब कि उसे विलक्षण अप्राकृत शुभविग्रह प्राप्त होगा और वह परमपद के समस्त भोगों का अधिकारी बनेगा । जो मानव इस संसार में रहने के समय अपने सिर से **श्रीवरवरमुनि स्वामीजी के श्री चरणों** का, अथवा उनकी **श्रीपादुका** का स्पर्श करने का भाग्य पायेगा, उसे अमानवकरस्पर्श के विना ही परमपद के सभी भोग मिल जायेंगे ।

उपदेशरत्नमाला-७४

।। जीयरतिरुवडिगलेशरणम् ।।

।। श्रीरुक्मणीसत्यभामासमेतवेणुगोपालपरब्रम्हणेनम: ।।

।। श्रीरुक्मणी श्रीसत्यभामा समेत श्रीवेणुगोपाल भगवान।।

श्री शठकोप स्वामीजी

श्रीमद्‌जगद्‌गुरु
भगवद्रामानुजाचार्य स्वामीजी

श्रीरामानुज अपरावतार विशदवाक्‌शिखामणि
श्रीवरवरमुनी स्वामीजी

श्रीकांची प्रतिवादि भयंकर
श्री अण्णा स्वामीजी

॥ श्रीवादिभीकरमहागुरवे नमः॥

अनन्त श्रीविभूषित श्रीमद्वेदमार्ग प्रतिष्ठापनाचार्य
उभय वेदांताचार्य जगद्गुरु श्री श्री १००८
श्रीकांची प्रतिवादि भयंकर सिंहासनाधीश्वर
श्री अनंताचार्य स्वामीजी महाराज

अनन्त श्रीविभूषित श्रीमद्वेदमार्ग प्रतिष्ठापनाचार्य
उभय वेदांताचार्य जगद्गुरु श्री श्री १००८
श्रीकांची प्रतिवादि भयंकर सिंहासनाधीश्वर
श्रीमत्कृष्णमाचार्य स्वामीजी महाराज

अनन्त श्रीविभूषित श्रीमद्वेदमार्ग प्रतिष्ठापनाचार्य
उभय वेदांताचार्य जगद्गुरु श्री श्री १००८
श्रीकांची प्रतिवादि भयंकर सिंहासनाधीश्वर
श्री श्रीनिवासाचार्य स्वामीजी महाराज

अनन्त श्रीविभूषित श्रीमद्वेदमार्ग प्रतिष्ठापनाचार्य
उभय वेदांताचार्य श्रीकांची प्रतिवादि भयंकर
श्रीअनन्ताचार्य स्वामीजी महाराज
(श्रीबालक स्वामीजी)

।। श्रीमते रामानुजाय नमः।।

अनन्त श्रीविभूषित श्रीमद्वेदमार्ग प्रतिष्ठापनाचार्य उभय वेदांताचार्य जगदाचार्य सिंहासनाधिपति महा महिमोपाध्याय श्री १००८ श्री महा विद्वान प्रतिवादि भयंकर
अण्णङ्गराचार्य स्वामीजी महाराज

अनन्त श्रीविभूषित श्रीमद्वेदमार्ग प्रतिष्ठापनाचार्य उभय वेदांताचार्य
श्रीशैल अनन्त पूरूष १००८ श्रीमत् यादवाद्रि विद्वान अक्कारक्कनि
सम्पतकुमाराचार्य स्वामीजी महाराज

।। श्रीरस्तु ।।

।। श्रीहस्तिशैलशिखरोज्ज्वलपारीजातायनम: ।। ।। श्रीरुक्मिणीसत्यभामासमेतवेणुगोपालपरब्रह्मणेनम: ।।

।। श्रीमत्परांकुशपरकालयतिवरवरवरमुनिभ्योनम: ।।

।। श्रीमदनन्तसुरीगुरुवर्यायनम: ।। ।। श्रीवादिभीकरमहागुरवेनम: ।। ।। श्रीकृष्णदेशिकायनम: ।।

श्रीमद् जगद्गुरु भगवद्रामानुजाचार्य सत्सम्प्रदायाचार्याः श्रीकांची प्रतिवादि भयंकर सिंहासनाधीश्वराः गादि स्वामीनः

श्रीनिवासाचार्याः

SRI KANCHI PRATIVADI BHAYANKAR MUTT

31/13, Varadaraj Temple Street, Kanchipuram-631501 (tamilnadu)

Ph : 044-27268718, M : 09364324844 • E-mail : kcm.pbananth@gmail.com

फाल्गुन-कृष्णव-५-रवि-सं-२०७२

श्रीभाष्यकार, जगदाचार्य, भगवद्रामानुजाचार्य के सहस्राब्दिमहोत्सव के सन्दर्भ में, तदुपलक्ष्य में, हिन्दीभाषाव्याख्यासहित "उपदेशरत्नमाला" प्रबन्ध को प्रकाशित कर रहे हैं। इस के रचयिता और इस प्रबन्ध के बारे में "प्रस्तावना" और "अवतारिका से अवगत होगा। इस प्रबन्ध की विस्तृत व्याख्या "मणिप्रवाल" भाषा में "पिळ्ळै लोकं जीयर्" से लिखी गयी है। प्रायः इसी के आधार पर जगदाचार्यसिंहासनाधीश श्री काञ्ची प्रतिवादिभयङ्कर अण्णङ्गराचार्य ने संस्कृतव्याख्या को रची है। उसी का हिन्दी अनुवाद, श्रीमद्यादवाद्रि ति.अ. अक्कारक्कनि सम्पत्कुमाराचार्य स्वामी जी से लिखा गया है। उस हिन्दी अनुवाद सहित इस उपदेशरत्नमालाप्रबन्ध का प्रकाशन हो रहा है।

इस प्रबन्ध के अन्तिम पद्य में, "श्रीमद्वरवरमुनीन्द्र" स्वामी जी घोषित करते हैं कि यह उपदेशरत्नमाला जिन का हृदयङ्गत है वे भगवद्रामानुजाचार्य के कृपापात्र होकर अमानवकरस्पर्श को प्राप्त कर सकते हैं। अर्थात मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं। अतः यह प्रबन्ध अत्यन्त उपादेय है। अतः इस का, इस सन्दर्भ में, प्रकाशित करना अत्यन्त उचित और आवश्यक है।

इस उपदेशरत्नमालाप्रबन्ध के पद्यों का संस्कृतविवर्तपद्य हर तमिलपद्य के नीचे ही छपे हैं। इस के रचयिता के बारे में अवतारिका से अवगत करें।

श्रीकाञ्ची प्रतिवादि भयङ्कर मठ के धर्मप्रचार द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है। प्रकाशन में सहयोगी श्री.कां.प्र.भ. मठ के शिष्यवृन्द को मङ्गलाशासन। इन की यह रुचि और श्रद्धा और इन का प्रयत्न उत्तरोत्तर अभिवृद्ध होते रहें। भगवच्च-रणारविन्दों में यह प्रार्थना है।

इति शुभम प्र.गादि श्रीनिवासाचार्य

।। श्री ।।
।। श्रीपरांकुशपरकालयतिवरवरवरमुनिभ्यो नमः ।।
।। श्रीवादिभीकरमहागुरवे नमः ।।

श्रीवरवरमुनिस्वामीजी से विरचित

।। उपदेशरत्नमाला ।।

श्रीकांची प्रतिवादिभयंकर जगदाचार्यसिंहासनाधीश
श्रीमदण्णंगराचार्यप्रणीत
संस्कृत व्याख्यान के अनुसार
श्रीयादवाद्रि अक्कारक्कनि सम्पत्कुमाराचार्यलिखित हिन्दी टीका ।

प्रकाशक :
श्रीप्रतिवादि भयंकर मठ, कांचीपुरम्

।। श्रीमते रामानुजाय नमः ।।

ग्रंथ प्राप्ति स्थान

1) श्री प्रतिवादि भयंकर मठ, कांचीपुरम्, ☎ : 044-27268718

2) श्री प्रतिवादि भयंकर मठ, तिरुमला, ☎ : 0877-2277889

3) श्री वेंकटेश देवस्थान, फणसवाडी-मुम्बई, ☎ : 022-22084628

पोस्ट द्वारा प्राप्त करने हेतु संपर्क :
shripratlivadibhayankar@gmail.com
मोबा. 09403727927

प्रकाशक : श्री प्रतिवादि भयंकर मठ
गादी स्वामी तिरुमालिगै,
31/13, सन्निधि स्ट्रीट,
कांचीपुरम् - 631 503, (तमिळनाडु)
मोबा. 09364324844

मुद्रक : कलासंगम प्रिंटर्स, इचलकरंजी.

प्रथम संस्करण : 1964

द्वितीय संस्करण : श्रीरामानुज सहस्रमानोत्सव, 2016

सेवा : रु. 45/-

श्रीमते रामानुजाय नम:

प्रस्तावना

इस पृथ्वीतल पर निवास करनेवाले सभी मानव भाग्यवान होने की इच्छा रखते है; ऐसा एक भी न मिलेगा जिसकी यह इच्छा न हो । परंतु, इस विषय में, कि भाग्य क्या चीज है, एकैक का अभिप्राय एकैक प्रकार का होगा। अर्थात् एकैक के अभिप्राय में, एकैक वस्तु भाग्य शब्द का अर्थ बनता है। अस्तु, अपेक्षणीय भाग्य की चिंता छोड कर अब हम जन्म से ही प्राप्त भाग्यों का विचार करेंगे । सत्कर्म करने की योग्यता से विरहित द्वीपांतरों को छोडकर स्वर्ग व मोक्ष कमाने के लिए आवश्यक धर्माचरण करने योग्य भारतदेश में हमने जन्म पाया है, यह हमारा पहला भाग्य है। इस पर तिर्यक् व स्थावर जन्म छोड कर श्रेष्ठ व दुर्लभ मानव जन्म लेना दूसरा भाग्य है। इसमें भी माता के गर्भ में अथवा जन्मित होने पर भी अल्प आयु में बहुत लोग मर जाते हैं; इसके विपरीत दीर्घायु पाना, यह तीसरा भाग्य है। इसके बाद, वेद व वैदिक अनुष्ठानों का तिरस्कार करनेवाले नास्तिकादि मत छोड कर, तत्वज्ञानी, परमपवित्र, परमभक्ताग्रेसर व विशाल यशवाले श्रीमन्नाथ यामुन-यतिराज-लोकाचार्य-वरवरमुनि इत्यादि महाचार्यों की शिष्यपरंपरा में जन्म लेना सबसे बडा भाग्य है। परंतु ये सभी भाग्य तभी सफल होंगे जब कि हम अपनी जाति व स्वरूप के अनुगुण विद्या सीख कर तदनुगुण आचरण करेंगे; अर्थात् वेदाध्ययन, व नित्यनैमित्तिकादि कर्मानुष्ठानों से अपनी जाति को, और अपने पूर्वाचायों की श्रीसूक्तियों का अध्ययन कर तदनुगुण श्रेष्ठ आचरण करने से अपने स्वरूप को संभालेंगे।

उक्त पूर्वाचार्यों की श्रीसूक्तियाँ, संस्कृत व द्राविड नामक दो भाषाओं में विराजती है। इनमें सहस्रगीति (और उसकी टीकाएं) सब से मुख्य मानी जाती

है। परंतु उसके अंगभूत ये दो दिव्यप्रबंध श्री रामानुजनूत्तंदादि व उपदेशरत्नमाला-उससे भी श्रेष्ठ माने जाते है। इनमें से पहला प्रबंध, जिसका नाम ''प्रपन्नगायत्री'' है, श्री रामानुजाचार्य स्वामीजी की स्तुति के रूप में अवतीर्ण है, और प्रसंगवशात् दूसरे आचार्यों का भी कुछ गुणवर्णन करता है। उपदेशरत्नमाला तो सभी दिव्यसूरियों तथा प्राय: प्रधानतम सभी आचार्यों का वैभव बतानेवाला है। आचार्यों का सिद्धांत है कि सहस्त्रगीति इत्यादि दिव्यप्रबंधों का अध्ययन करने में अशक्त लोगों को भी इन दो ग्रंथो का नित्य पाठ करना ही चाहिए। शिष्टाचार भी ऐसा ही चलकर आया है। यद्यपि बिनद्राविडों (तमिळ नहीं जाननेवाले) को, उपदेश पाये बिना इनका कंठपाठ करना कठिन होगा; तथापि इनमें से कतिपय पद्यों का भी क्यों न हो, प्रतिदिन पाठ करना अत्यंत आवश्यक है। अर्थानुसंधान करना तो अत्युत्तम है ही। अत: हमारी इच्छा है कि श्री वैष्णवजन इस पुस्तक का पूरा उपयोग करेंगे ।

।। श्रीपरांकुशपरकालयतिवरवरवरमुनिभ्यो नमः ।।

श्रीवरवरमुनिस्वामीजी से अनुगृहीत

।। उपदेशरत्नमाला ।।

अवतारिका

श्रीसरोमुनिप्रभृति श्रीपरकालसूरिपर्यन्तै-र्दिव्यसूरिभिः श्रीमत्या गोदादेव्या चानुगृहीतास्सर्वेऽपि द्राविडाम्नायदिव्यप्रबन्धा भगवत्प्रभावप्रतिपादनेदम्पराः प्रथिताः। श्रीमधुरकविसूरिदिव्यप्रबन्ध एक आचार्यवैभवकीर्तनपरो लघुः प्रबन्धः। श्रीमदमृतकविप्रणीतः प्रपन्नगायत्रीनाम्ना प्रथितो रामानुजनूत्तन्दादिदिव्यप्रबन्धोऽप्याचार्य-प्रभावप्रतिपादनतत्परोऽष्टोत्तरशतगाथात्मकः। भगवत्प्रभावाद-प्याचार्यवैभवस्यातिशयितत्वं श्रीवचनभूषणदिव्यशास्त्रसिद्धमिति हेतुना भगवद्वैभवप्रतिपादनपरदिव्यप्रबन्धवर्गादपि आचार्यवैभवप्रतिपादनपरौ निर्दिष्टावुभौ दिव्यप्रबन्धावतिशयिततरौ श्रीवैष्णवगोष्ठ्यामतितरां श्लाध्येते ।

अथेदानीं श्रीमद्वरवरमुनीन्द्रैरनुगृहीतामुपदेशरत्नमालामधिकृत्य प्रस्तुमः। श्रीसरोमुनिमुखानां दिव्यसूरीणामवतारनक्षत्राण्यवतारस्थलानि चावबोधयितुं प्राक्काले उपदेशपरम्परातोऽन्यत्साधनं न किमप्यासीत् । गुरुपरम्पराप्रभावाभिधानस्य वचनरूपत्वेन प्रक्षेपोत्क्षेपशंकाकलंका-स्पदत्वात् छन्दोबद्धेन द्राविडवाङ्मयेन प्रबन्धेनावतरितव्यमासीत्।

दिव्यप्रबंधानां व्याख्यानादिप्रणयनमुखेन महोपकारकाणां महाचार्याणां प्रभावप्रख्यापनावश्यकता चासीत्। इत्थमत्यावश्यकानां विषयाणां यथायथं प्रख्यापनपर: कोऽपि दिव्यप्रबन्ध: प्रादुर्भावयितव्य इति शिष्यमण्डल्या प्रार्थिता: श्रीवरवरमुनीन्द्रा: तथेत्यभ्युपगम्य रत्नमाला-मिमामनुगृहीतुमुपाक्रंसत। भगवद्रामानुज मुनीन्द्राश्चतुस्सप्तति-सिंहासनाधिपतीन् प्रतिष्ठापयामासुरिति सुप्रसिद्धत्वात् तामेव संख्यामादृत्य चतुस्सप्ततिगाथा ग्रथित प्रबन्धं प्रणेतुं कृतसंकल्पा बभूवु:।

अथ शिष्यमण्डली सकला संमिलिता एवमालोचयामास दिव्यसूरीनिव आचार्यवर्यानप्युपश्लोकयितुं प्रवर्तमाने प्रबन्धेऽस्मिन् आचार्यसार्वभौमस्यास्य मुनिवरेण्यस्याप्युपश्लोकनमावश्यकम्: स्वप्रशंसां स्वयमेव न कुर्यादसौ मुनिपुंगव:; अत: त्रिसप्ततिसंख्याका एव गाथा असावनुगृह्णातु; अन्तत एकां गाथां श्रीचरणविषयिणी वयं निबध्य संकलयेम; स्वातन्त्र्येणैवं करणे अनुसन्धानपरम्परायामस्मदीयं स्तुतिपद्यं नागच्छेत्; भगवदाज्ञामूलकतया कारयितव्यमेतदिति। अवधार्य चैवं सर्वाऽपि शिष्यमण्डली भगवन्तं श्रीरंगनाथमुप्सृप्य प्रवृत्तिमिमां सविनयं विज्ञाप्य ''श्रीवरवरमुनीन्द्र: त्रिसप्तति गाथा एव यथाऽनुगृह्णीयात्तथा शासनमवतारयितव्यं श्रीमता'' इति प्रार्थयते स्म। श्रीवरवरमुनीन्द्रश्च नित्यमाह्निकमवसाय्य यथायथं भगवद्रंगनाथमंगलाशासनार्थं मन्दिरमुपाययौ। श्रीरंगनाथश्च निजेक्षणसुधासिन्धुवीचिविक्षेपशीकरान् कारुण्यमारुतानीतान् शीतलान् प्रवाह्य तथैव दिव्यशासनमन्वगृह्णात् । वरवरमुनीन्द्रश्च धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मीति विज्ञाप्य स्वमावसथमासाद्य यागानुयागौ परिसमाप्य रत्नमालाप्रबन्धं त्रिसप्ततिगाथात्मकमेव निरमिमीत । अन्ततश्च अष्टदिगग्जाचार्येष्वन्यतमो देवराजगुरु: ''भोभो

जना इह मुनेः रुचिरोपयन्तुः पादारविन्दयुगलं कनकाभिरामम् । मूर्घ्ना स्पृशेम यदि सत्यममानवस्य हस्तावलम्बमहिमाऽप्यनपेक्षितस्स्यात्।।'' इत्यनुवादयोग्यां द्राविडीं गाथां विज्ञाप्य, तां चतुस्सप्ततितमगाथात्वेन संयोज्य भगवदाज्ञया अनुसन्धानपरम्परायामानिनाय ।

स्वाचार्यश्रीशैलनाथगुरुवरोपदिष्टानामर्थानां संसारिभ्यः स्वचेतसे चोपदेशरूपतया कथनादुपदेशरत्नमालेति नाम सुशोभनमस्य । सर्वत्र दिव्यदेशेषु मठेषु भवनेषुच चतुस्सहस्रीनिर्विशेषमसावपि दिव्यप्रबन्धः श्रीवरवरमुनीन्द्रकालात्प्रभृत्येव समादरणीयतामवाप । आचार्यपौत्र इति ''जीयर् नयिनार्'' इतिच प्रसिद्धः श्रीवरवरमुनीन्द्राणां पूर्वाश्रमपुत्रस्य पुत्ररत्नमभिरामवराचार्यो महाकविर्विद्वन्मणिरमुं दिव्यप्रबन्धं संस्कृतपद्यमयविवर्तं प्रापयामास । सोऽयमपि चिरादनुसन्धानपदे वर्तत इति स एवात्र हिन्दीटीकासनाथः प्रकाश्यते । द्राविडभाषायाम् ''वेण्पा'' नाम्नि सुमनोहरे छन्दसि मूलप्रबन्धोऽस्त्यवतीर्णः। तदानुरूप्येण संस्कृते कर्णसुभगतया प्रथिते वसन्ततिलकवृत्तेऽन्ववादीत्कविसार्वभौमः। अस्यैव कवेः कृतिः नक्षत्रमालिकेति नास्ति विस्तरावश्यकता कविता-लालित्यगाम्भीर्यादिष्विति सर्वं समञ्जसम् ।।

अवतारिका (हिंदी)

श्री सरोयोगी प्रभृति श्री परकालसूरी तक के दिव्यसूरियों तथा श्री गोदादेवी से अनुगृहीत सभी द्राविडवेद-दिव्यप्रबंध भगवान के वैभव का वर्णन करने के लिए ही अवतीर्ण हैं। श्रीमधुरकविसूरी का रचा हुआ''कण्णिनुण् शिरुत्ताम्बु'' नामक एक लघुतर प्रबंध आचार्य

श्रीशठकोप सूरी के वैभव का प्रकाशक है। एवं श्रीरंगामृत कवि से अनुगृहीत 'प्रपन्नगायत्री' विरुदविभूषित 'श्रीरामानुजनूत्तंदादि' दिव्यप्रबंध, आचार्यसार्वभौम श्री रामानुजस्वामीजी की स्तुतिरूप है। श्रीवचनभूषण दिव्यशास्त्र में यह अर्थ स्थापित किया गया है कि भगवत्प्रभाव की अपेक्षा आचार्य का प्रभाव ही अधिक है; अतः भगवद्वैभव का वर्णन करनेवाले दूसरे दिव्य प्रबंधों की अपेक्षा आचार्यवैभवप्रतिपादक, पूर्वोक्त दो दिव्य प्रबंध श्रेष्ठतर और श्रीवैष्णव गोष्ठी में श्लाध्यतर होते हैं।

अब श्री रामानुज स्वामीजी के अपरावतार, आचार्यसार्वभौम श्री वरवरमुनि स्वामीजी से अनुगृहीत प्रकृत उपदेशरत्नमाला के बारे में दो शब्द कहेंगे। पूर्वकाल में आळ्वारों के अवतार का समय, देश इत्यादि जानने का एकमात्र साधन उपदेशपरंपरा ही थी। यद्यपि गुरुपरंपराप्रभाव नामक एक ग्रंथ था। तथापि द्राविडी गद्यग्रंथ के रूप में अवतीर्ण उसमें प्रेक्षपविक्षेपों की शंका बनी रहती । अतः उक्त अर्थों का विवरण करनेवाले द्राविडपद्यमय एक ग्रंथ की आवश्यकता प्रतीत होने लगी । एवं दिव्यप्रबंधों की व्याख्या इत्यादि महान ग्रंथ लिख कर हमें बहुत उपकार किये हुए महाचार्यों के प्रभाव का भी प्रकाशन करना आवश्यक हुआ । अतः श्री वरवरमुनि स्वामीजी से उनकी शिष्यमंडली ने ऐसे अत्यवश्य-ज्ञातव्य सदर्थों का विवरण करनेवाला एक दिव्यप्रबंध रचने की प्रार्थना की । तब श्री स्वामीजी ने कहा, 'तथास्तु' और अपने मन में यह उपदेशरत्नमाला ग्रंथ लिखने का विचार किया । उनका संकल्प हुआ कि श्री रामानुज स्वामीजी से प्रतिष्ठापित सिंहासनाधिपतियों की संख्या के स्मारकतया चौहत्तर पद्यवाला ग्रंथ लिखूं। इतने में शिष्यमंडली ने

मिल कर यह विचार किया - ''दिव्यसूरियों तथा पूर्वाचार्यों की स्तुति करने के लिए ही अवतार लेनेवाले इस दिव्यग्रंथ में आचार्यसार्वभौम हमारे गुरुजी की भी स्तुति मिलाना अत्यावश्यक है। परंतु यह कैसे हो सकता है? गुरुजी तो स्वयं अपनी प्रशंसा या स्तुति नहीं कर सकते । अतः आप तिहत्तर गाथाएं लिखें और हम गुरुजी की स्तुतिरूप एक गाथा लिख कर उससे मिला दें, तो ठीक होगा । परंतु यदि हम स्वतंत्र होकर यह काम करेंगे, तो शायद शिष्ट लोग इसको स्वीकार नहीं करेंगे और हमारा पद्य अनुसंधान परंपरा में नहीं आवेगा; और गुरुजी भी इसको स्वीकार नहीं करेंगे। अतः इस विषय में भगवदाज्ञा प्राप्त करना उचित होगा ।'' यह निश्चय कर उन महात्माओं ने मंदिर जाकर श्रीरंगनाथ भगवान से इस विषय की प्रार्थना की। इतने में श्री स्वामीजी भी अपने नित्यकर्मों का अनुष्ठान करके भगवान का मंगलाशासन (दर्शन) करने के लिए मंदिर पधारे । तब भगवान ने उनपर कृपादृष्टि करते हुए उन्हें आज्ञा दी कि आप केवल तिहत्तर गाथावाला प्रबंध बना दें । यह आज्ञा शिरोधार्य मान कर श्रीस्वामीजी स्वस्थान लौटे और अपनी नित्य पूजा पाठ इत्यादि के समाप्त होने के बाद उन्होंने तिहत्तर पद्यवाला यह उपदेशरत्नमाला दिव्यप्रबंध लिखा। फिर अष्टदिग्गजों में एक, श्री देवराजगुरु ने आचार्य की स्तुतिरूप एक गाथा लिखकर उसे इस ग्रंथ में मिला दिया और भगवान की दिव्याज्ञा से चौहत्तर पद्यवाला यह दिव्यग्रंथ अनुसंधानपरंपरा में आने लगा। श्री स्वामीजी ने अपने गुरु श्रीशैलनाथ स्वामीजी से उपदिष्ट सदर्थों को गुंथकर, अपने मन एवं शिष्यमंडली को उपदेश देने की भावना से यह ग्रंथ रचा है; अतः इसका यह उचित नाम रखा गया उपदेशरत्नमाला । अर्थात इसमें कभी कभी

गुरुजी अपने मन को, और कभी कभी शिष्यमंडली को संबोधित कर उसे उपदेश देते हैं। उक्त प्रकार की विशेष भगवदाज्ञा से सभी दिव्यदेश, मठ, मकान आदियों में दूसरे दिव्यप्रबंधों की भांति इस दिव्यग्रंथ का भी पाठ श्री वरवरमुनि स्वामीजी के जीवित समय में ही चालू किया गया। विशेषत: कृत्तिकोत्सव के बाद, जब समस्त दिव्यप्रबंधों का अनध्ययन माना जाता है, तब मंदिरों में उनकी जगह इस उपदेशरत्नमाला का ही (तथा इन्ही आचार्य सार्वभौम के लिखे हुए तिरुवाय्मोळि नूत्तंदादि का) पाठ करने का संप्रदाय हैं। एवं आळ्वारों तथा आचार्यों के अवतार दिनों में उनके वैभव का वर्णन करनेवाली उपदेशरत्नमाला गाथाओं का पाठ करना भी संप्रदायसिद्ध है।

श्री स्वामीजी के पूर्वाश्रमपुत्र के पुत्र, ''अभिरामवर'' अथवा ''जीयर् नायनार्'' शुभनाम से विभूषित ''आचार्यपौत्र'' नामसे प्रसिद्ध महात्मा, बडे विद्वान कविराज और दादाजी की विशेष कृपा के पात्र होकर विराजमान थे। उन्होंने इस उपदेशरत्नमाला का अतिभोग्य संस्कृत पद्यमय अनुवाद रचा है। यह भी दिव्यग्रंथ उस समय से ही परंपरा से पठ्यमान है। हाल में मूल द्राविडी गाथा, उसका संस्कृत अनुवाद, और हिंदी अनुवाद व लघु टीका प्रकाशित किये जायेंगे। मूलग्रंथ, द्राविडी में 'वेण्पा' नामक मनोहर छंद में रचा गया है; तदनुरूप संस्कृत पद्य अतिमनोहरतया प्रसिद्ध 'वसंततिलक' वृत्त में रचा गया है। वांचने मात्र से इस संस्कृतग्रंथ की मनोहारिता वाचकों को स्पष्ट विदित होगी; अत: इस विषय में हमें अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं रहती। नक्षत्रमालिका नाम से प्रसिद्ध श्री शठकोपस्तुतिरूप सुंदर ग्रंथ भी इन महात्मा का ही रचा हुआ है। इनका तनियन यह है-

अस्मासु वत्सलतया कृपया च भूयः स्वेच्छावतीर्णमिव सौम्यवरं मुनीन्द्रम् ।
आचार्यपौत्रमभिरामवराभिधानम् अस्मद्गुरुं परमकारुणिकं नमामि ।।

हमारे ऊपर के विशेष वात्सल्य व कृपा के परवश होकर, (हमें अनुगृहीत करने के लिए) केवल अपनी इच्छा से इस संसार में फिर श्री वरवरमुनिस्वामीजी ही (इनके रूप में) अवतार लिये होंगे, यों कहलाने योग्य, आचार्यपौत्र, और परमकारुणिक, हमारे गुरु श्रीमदभिरामवराचार्य स्वामीजी को नमस्कार करूंगा। (अर्थात् इन आचार्य सार्वभौम का अप्रतिमवैभव देखनेवालों का यह सिद्धांत था, कि ये श्री वरवरमुनि स्वामीजी के ही पुनरवतार हैं।)

।। श्रीमते रामानुजाय नम: ।।

तनियन

(समस्त दिव्य प्रबंधों के प्रारम्भ में इनका अनुसंधान किया जाता है)

श्रीशैलेशदयापात्रं धीभक्त्यादिगुणार्णवम् ।
यतीन्द्रप्रवणं वन्दे रम्यजामातरं मुनिम् ।।१ ।।

लक्ष्मीनाथसमारम्भां नाथयामुनमध्यमाम् ।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ।।२ ।।

यो नित्यमच्युतपदाम्बुजयुग्मरुक्म-
व्यामोहतस्तदितराणि तृणाय मेने ।
अस्मद्गुरोर्भगवतोऽस्य दयैकसिंधो:
रामानुजस्य चरणौ शरणं प्रपद्ये ।।३ ।।

माता पिता युवतयस्तनया विभूति:
सर्वं यदेव नियमेन मदन्वयानाम् ।
आद्यस्य न: कुलपतेर्वकुलाभिरामं
श्रीमत्तदंघ्रियुगलं प्रणमामि मूर्ध्ना ।।४।।

भूतं सरश्च महदाह्वय भट्टनाथ
श्री भक्तिसारकुलशेखरयोगिवाहान् ।
भक्तांघ्रिरेणुपरकालयतीन्द्रमिश्रान्
श्रीमत्परांकुशमुनिं प्रणतोऽस्मि नत्यम् ।।५।।

।। श्रीमद्वरवरमुनयेनमः ।।

''आचार्यपौत्र'' अभिरामवराचार्य - विरचित संस्कृत पद्यरूप

अनुवाद से तथा हिंदी टीका से युत

श्रीमद्वरवरमुनि स्वामीजी द्वारा विरचित

उपदेशरत्नमाला

✻ तनियन् ✻

मुन्नन्तिरुवाय् मोळिप्पिळ्ळै तामुपदेशित्त ✻

नेर् तन्निन्पडियै त्तणवादशोल् मणवाळमुनि ✻

तन्नन्बुडन् शेय्युपदेशरत्तिनवालै तन्नै ✻

तन्नेञ्जु तन्निल् धरिप्पवर् ताळ्कळ् शरण् नमक्के ।।

प्राक्श्रीगिरीन्द्रगुरुराडुपदिष्टमार्गं कात्स्न्र्येन संनिगदता रुचिरोपयन्त्रा ।

स्वप्रेमतः सुकलितामुपदेशरत्नमालां वहन्ति हृदि ये मम ते शरण्याः ।।

यह द्राविडपद्य श्रीवरवरमुनि स्वामीजी के प्रधान शिष्य श्री वाधूल वरदनारायण गुरु का रचा हुआ है। इसका संस्कृत पद्यरूप अनुवाद ''आचार्यपौत्र'' से अनुगृहीत है। इसका तात्पर्य यह है पहले ''तिरुवाय् मोळिप्पिळ्ळै'' (माने श्रीशैलनाथस्वामीजी) नामक अपने गुरुजी से उपदिष्ट क्रम के अनुसार विशदवाक् श्री वरवरमुनिस्वामीजी से अनुगृहीत ''उपदेशरत्नमाला'' दिव्यप्रबंध का, अपने हृदय में धारण करनेवालों के श्रीचरण हमारे रक्षक हैं।

ग्रंथ रचनेकी प्रतिज्ञा करना

एन्दै तिरुवाय् मोळिप्पिळ्ळै यिन्नरुळाल् वन्द *
उपदेश मार्गत्तैच्चिन्दे शेय्दु *
पिन्नवरुंकर्क उपदेशमाय् पेशुहिन्नेन् *
मन्निय शीर् वेण्पाविल् वैत्तु ।।१।।

मद्देशिकद्रविडवेदगुरोः प्रसादाल्लब्धं विचिन्त्य सरसादुपदेशमार्गम् ।
पश्चात्तनार्थमुपदेशमिमं ब्रवीमि वृत्ते वसन्ततिलके विनिवेश्य सौम्ये।।१ ।।

मैं अपने गुरुजी तिरुवाय्मोळिप्पिळ्ळै स्वामीजी की परमकृपा से लब्ध उपदेशमार्ग के अनुसार अपनी संतान की जानकारी के लिए अनुरूप 'वेण्पा' वृत्त में रचकर (अपने हृदय तथा लोगों के) उपदेश के रूप में कहूंगा (यह ग्रंथ लिखूंगा)। (विवरण- श्री वरवरमुनि स्वामीजी के गुरुजी का मूल नाम था-श्रीशैलनाथार्य स्वामीजी । परंतु तिरुवाय्मोळि नामक सहस्रगीति का प्रवचन इत्यादि करने में आप इतने समर्थ थे कि आपका यह विरुद हुआ कि ''तिरुवाय्मोळिप्पिळै'' (माने सहस्रगीति -आचार्य)। क्रमशः यही विरुद आप का शुभनाम बन गया। इन्होंने श्री वरवरमुनि स्वामीजी को पूर्वाचार्यों की परंपरा से उपदिष्ट

सांप्रदायिक समस्त सदर्थों का उपदेश दिया था। श्री स्वामीजी ने विचार किया कि बाद में लोग इन अर्थों को भूल जायंगे अथवा इनमें और कुछ गडबड कर देंगे। अत: इस आपत्ति से भावी संतान को बचाने के लिए उन्होंने उक्त उपदेशों का संग्रह कर यह उपदेशरत्नमाला नामक ग्रंथ रचा। अर्थात परंपराप्राप्त अर्थ ही इसमें भरे हैं; न तु स्वकपोलकल्पित दूसरा कोई अर्थ। इससे श्रीस्वामीजी की प्रामाणिकता बताई जाती है।)... (१)

सत्पुरुषों की प्रशंसा से तृप्त होना ; असूयालुओं की निंदा की परवा नहीं करना

कत्तोर्हळ् तामुहप्पर् कल्वितन्निलाशैयुळ्ळोर् *
पेत्तोमेन वुहन्दु पिन्बु कर्प्पर * मत्तोर्हळ्
माच्चरियत्ताल् इहळिल् वन्ददेन्नेञ्जे *
इहळ्है आश्चर्यमो तानवर्क्कु ।।२।।

नन्दन्ति ये श्रुतिधना: सुकृतीप्सवोऽपि यत्नोऽयमस्मदुपकार इति प्रहृष्टा:।
अन्ये तु मत्सरवशादवधीरयेरन् किं तेन तैरवमति: किमु विस्मयाय।।(२)

हे मन ! विद्या में उत्तीर्ण जन यह ग्रंथ पाकर आनंदित हो जायेंगे; विद्या में आसक्ति करनेवाले यों कहते हुए कि, ''अहो ! हमने यह ग्रंथ पाया है !'' आनंदित होकर, फिर इसका अध्ययन करने लगेंगे; और दूसरे लोग मात्सर्य से यदि इसकी निंदा करेंगे, तो उससे हमारी कौन-सी हानि होगी ?

ऐसे लोगों के (सद्विषय की) निंदा करने में आश्चर्य कौनसा है ? (अर्थात् निंदा करना ही उनका स्वभाव है।) (विवरण - सत्पुरुष इस ग्रंथ का स्वागत करते हुए सानंद इसका अध्ययन करेंगे; यही हमारे लिए

पर्याप्त है। कितने कुजन मात्सर्य से इसकी निंदा करते होंगे; परंतु हम उनकी परवाह नहीं करेंगे । क्योंकि उनके निंदा करने का कारण, अपना मात्सर्य ही है, नतु निंदा के पात्र ग्रंथ की किसी प्रकार की न्यूनता ।)...(२)

आळ्वारों, आचार्यों, तथा उनकी श्रीसूक्तियों का मंगलाशासन करना

आळ्वार्हळ् वाळि अरुळिच्चेयल् वाळि *
ताळ्वादुमिल् गुरवर् ताम् वाळि * एळ्पारु-
मुय्य अवर्हळुरैत्तवैहळ् ताम् वाळि * शेय्यमरै तन्नुडने शेर्न्दु ।।३।।

भद्रं शठारिमुखभक्तजनस्य तत्तद्दिव्यप्रबंधनिवहस्य च, दोषलेशात्।
मुक्तस्य देशिकजनस्य तदुक्तिराशेरुज्जीवनस्य जगतां सहितस्य वेदैः।।

आळ्वारों की जय हो; उनसे अनुगृहीत दिव्यप्रबंधों की जय हो; किसी प्रकार की न्यूनता से विरहित (अर्थात् सर्वश्रेष्ठ) हमारे गुरुओं की जय हो; समस्त भूमंडल के उज्जीवनार्थ उनसे अनुगृहीत श्रीसूक्तियों की तथा विलक्षण वेदों की भी जय हो। (विवरण - समस्त भूमंडल का उद्धार करने के लिए ही अवतीर्ण वेदों, भक्ताग्रेसर व तत्वदर्शी अळ्वारों, उनसे अनुगृहीत द्राविडवेदशब्दवाच्य दिव्यप्रबंधों, इन सबके यथार्थ अर्थों का उपदेश देनेवाले हमारे पूर्वाचार्यों, उनके महान ग्रंथों तथा अनादि प्रमाण वेदों का मंगलशासन इस गाथा से किया जा रहा है।)... (३)

आळ्वारों का अवतारक्रम बताना

पोय्हैयार् पूदत्तार् पेयार् * पुगळ्

मळिशै अय्यन् अरुळ् मारन् शेरलर्कोन् ✽ तुय्य भट्ट-
नाथन् अन्बर्ताळ् तूळि नर्पाणन् नन्कलिन् ✽
ईदिवर्तोत्तत्तडैवामिंगु ।।४।।

कासार-भूत-महदाह्वय-भक्तिसार-
श्रीमच्छठारि-कुलशेखर-भट्टनाथा: ।
भक्तांघ्रिरेणु-मुनियान-कलिद्रुहोऽपि
भूमौ वितेनुरमुत: क्रमतोऽवतारम् ।।४ ।।

(१) श्री सरोयोगी (२) श्री भूतयोगी (३) श्री महदाह्वय योगी (४) कीर्तिसंपन्न श्री भक्तिसारसूरी (५) कृपामय श्री शठकोपसूरी (६) श्री कुलशेखर सूरी (७) परिशुद्ध श्री भट्टनाथ सूरी (८) श्री भक्तांघ्रिरेणुसूरी (९) परमसात्विक श्री पाणनाथ सूरी और (१०) विलक्षण श्री कलिवैरि (परकाल) सूरी; यही, इन आळ्वारों के इस भूतल पर अवतार लेने का क्रम है। (माने इसी क्रमसे आळ्वारों का अवतार हुआ।) (आजकल के अनुसंधाता विद्वान लोग अपनी इच्छा के अनुसार आळ्वारों के अवतार क्रम अदलबदल कर देते हैं। इस संकट से आस्तिकों को बचाने के उद्देश्य से श्रीस्वामीजी प्रकृत पद्य से उपदेश परंपराप्राप्त और अत एव प्रामाणिक क्रम का उपदेश कर देते हैं।) ... (४)

आळ्वारों के अवतार काल बताने की प्रतिज्ञा करना

अन्तमिळाल् नर्कलैगळ् आय्न्दुरैत्त आळ्वार्हळ् ✽
इन्दवुलगिलिरुळ् नींग ✽ वन्दुदित्त
मासंगळ् नाळ्हळ् तम्मै मण्णुलहोर्तामरिय ✽
ईदेन्नु शोळ्ळुवोम् याम् ।।५।।

आविद्यमन्धतमसं परिहर्तुमस्मिन् लोकेऽवतीर्य सरसैर्द्रविडप्रबन्धैः।
वेदान् विवर्तितवतामवतारमासतारा: क्रमादभिदधे
शठजिन्मुखानाम्।।५।।

मधुर द्राविड भाषा में दिव्यप्रबंधों के सविमर्श रचनेवाले पूर्वोक्त आळ्वारों ने इस भूमंडल पर व्याप्त अज्ञानांधकार मिटानेके लिए जब इधर पधारकर अवतार लिए, अब हम भूतलवासियों की जानकारी के लिए उन मासों व नक्षत्रों का विवरण करेंगे । (मानवों का अज्ञानांधकार मिटाने के लिए इस भूतल पर अवतार लेकर, समस्त शास्त्रों का विवेचन पूर्वक दिव्यप्रबंध रचनेवाले आळ्वारों के अवतार समय, माने मास व नक्षत्रों का वर्णन करने की प्रतिज्ञा इस गाथा में की जा रही है।)...(५)

सरो भूत महदाह्वय योगियोंका अवतार समय बताना

ऐप्पशियिलोणम् अविट्टम् शदयमिवै ✻
ओप्पिलवा नाळ्कळुलहत्तीर् ✻ एप्पुवियुम्
पेशुपुहळ् पोय्हैयार् पूदत्तार् पेयाळ्वार् ✻
तेशुडने तोन्नु शिरप्पाल् ।।६।।

सर्वत्र गीतयशसस्सरआह्वयस्य
भूताभिधानमहदाह्वययोश्च गुर्वो:।
दिव्यावतारदिवसानि तुलाख्यमासि
तिस्र: क्रमादभिदधे श्रवणादितारा: ।।६।।

हे भूलोकवासी जनो ! तुलामास के श्रवण, धनिष्ठा व शतभिषा, ये तीन दिन, भूतल पर सर्वत्र व्याप्त यशवाले श्री सरोयोगी, भूतयोगी और महदाह्वययोगियों के तेजोमय अवतार के कारण असदृश दिन बने हैं। (विवरण- सरो, भूत व महदाह्वय नामक ये तीनों योगी सदा

संमिलित ही रहते थे; दिव्यदेशों में अर्चारूप में भी ये ऐसे ही विराज रहे हैं। अत: एक ही पद्य में इन तीनों के अवतार के दिन बताये जा रहे हैं। द्राविडदेशमें सौरमानमास से कालकी गिनती की जाती है, और उसी हिसाब से अवतारोत्सव इत्यादि मनाये जाते हैं। अत: इस ग्रंथ में ये ही मास बताये जाते हैं। सूर्य के, एक राशि से दूसरी राशि जाने तक का समय सौरमान मास कहा जाता है। मेष, वृषभ, मिथुन, कर्कट, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुंभ व मीन, ये बारह सौरमान मासों के नाम हैं। ये मास चंद्रमान चैत्र, वैशाखादि मासों से प्राय: मिलते हैं; कदाचित् चंद्रमान मास कुछ आगे बढता है। अस्तु। संस्कृत अनुवादकर्ता स्वामीजी तो चांद्रमान नामों का, तत्रापि मधु, माधव, शुक्र, शुचि इत्यादि वैदिक नामों का ही प्रयोग करते हैं। तथापि समझना चाहिए कि उनके अभिप्राय से ये शब्द सौरमान मासों के ही सूचक हैं। तेजोमय अवतार कहने का यह तात्पर्य है कि ये तीनों योगी अयोनिज थे।)...(६)

उक्त तीनों सूरियों को प्रथमसूरी कहने का कारण बताना

मत्तुळ्ळवाळ्वार्हळुक्कु मुन्ने वन्दुदित्तु *
नत्तमिळाल् नूल् शेय्दु नाट्टैयुय्त्त * पेत्तिमैयोर्
एन्नु मुदलाळ्वार्हळेन्नुम् पेयरिवर्क्कु *
निन्नदुलहत्ते निहळ्न्दु ।।७।।

भक्तेष्वमीषु दशसु प्रथमं परेभ्य:
एते त्रयस्समुदिता द्रविडागमै: स्वै:।
यस्माज्जगन्ति सकलान्युपजीवयन्तो
भक्तास्तत: प्रथम इत्यभिधानमेषाम् ।।७।।

इन तीनों आळ्वारों ने, दूसरे आळ्वारों से पहले यहां अवतार लेकर, विलक्षण द्राविडी भाषा से (तिरुवन्दादि नामक तीन) प्रबंध रचकर, इस लोक को उज्ञीवित किया; इस कारण से इस भूतल पर इनका 'प्रथमसूरी' शुभनाम प्रसिद्ध हुआ। (विवरण - सरो भूत महदाह्वय नामक इन तीन सूरियों को मिला कर ''मुदलाळ्वार्हळ्'' अथवा ''प्रथमसूरी'' कहते हैं; अब इसका यह कारण बताया जाता है कि दिव्य सूरियों की गोष्ठी में सबसे पहले इन्होंने ही अवतार लिया और दिव्यप्रबंध गाये ।).... (७)

श्री परकालसूरि तिरु मंगै आळवार का अवतारकाल बताना

पेंदै नेञ्जे ! इन्नैप्पेरुमैयरिन्दिलैयो * एदु
पेरुमैयिन्नैक्केन्रेन्निल् * ओदुहिन्नेन्
वाय्त्तपुहल् मंगैयर्कोन् मानिलत्तिल्
वन्दुदित्त * कार्तिकैयिल् कार्तिकै नाळ् काण् ।।८।।

नावैषि वैभवममुष्य दिनस्य मुग्ध चेत:!
किमेतदिति पृच्छसि चेह्वीमि।
पश्य त्वमद्य परकालकवे: प्रदीप्ता
दिव्योदयेन ननु कार्तिककृत्तिकास्ता: ।। ८ ।।

हे मूढ मन ! क्या तुमने आजका वैभव नहीं समझा? क्या तुम यों पूछोगे कि 'आजका कौनसा असाधारण वैभव है?' तो कहूंगा, सुनो । आज वृश्चिक मास में कृत्तिकानक्षत्र का दिन है, जब कि अनुरूप यशवाले तिरुमंगैयाळ्वार (श्री परकाल अथवा कलिवैरिसूरी) ने इस विशाल पृथ्वीतल पर अवतार लिया । (विवरण- श्रीवैष्णव मंदिरों, मठों व गृहों में आळ्वारों के अवतार दिनों में अनुसंधान करने योग्य

स्तुतिपद्यों की रचना करना इस प्रबंध का एक मुख्य उद्देश है। अत: इन गाथाओं में तत्र तत्र ''आजके दिन अमुक महात्मा का अवतार हुआ'' इत्यादि प्रकार से उस उस दिन का निर्देश किया जाता है । आळ्वारों के अवतार क्रम के अनुसार, जो कि चौथी गाथा में उपवर्णित किया गया, प्रथमसूरियों के बाद श्री भक्तिसारमुनींद्र का अवतार दिन बताना था। परंतु स्वामीजी यह क्रम छोडकर दूसरा एक क्रम अपना रहे हैं। प्रथमसूरियों के अवतार तुलामास में हुए न? इस माससे शुरू कर आप मासक्रम से, अर्थात् वृश्चिक, धनु, मकर इत्यादि क्रमसे उस उस मासमें अवतीर्ण आळ्वार का अवतार दिन बताते हैं। अत: अब वृश्चिक मास में अवतीर्ण श्री परकालसूरी की बारी आ गयी है। कृत्तिकाशब्द नित्यं बहुवचनान्त है। ...(८)

तिरुमंगैयाळ्वार का विलक्षण वैभव बताना

मारन् पणित्त तमिळ् मरैक्कु मंगैयर्कोन् *
आरंगङ्कूर अवतरित्त * वीरूडैय
कार्तिकैयिल् कार्तिकैनाळ् इन्रेन्रु कादलिप्पार् *
वाय्त्त मलर्ताळ्कळ् नेञ्जे वाळ्त्तु।।९।।

अंगानि षड्द्रविडवेदचतुष्टयस्य कर्तुं शठारिकलितस्य कलिप्रशास्ता ।
यत्राविरास भुवि कार्तिककृत्तिकासु तद्वैभवज्ञपदपद्ममुपैहि चेत:।।९।।

हे मन! ''श्री शठकोपसूरी द्वारा विरचित चार ग्रंथरूपी द्राविडवेदों पर षडंग कहलानेवाले टीकारूपी छे दिव्य प्रबंध लिखनेवाले तिरुमंगैयाळवार ने जब अवतार लिया, ऐसे वैभववाला, कार्तिक मास में कृत्तिका नक्षत्र का दिन आज ही है न?'' यों मानते हुए इस पर विशेष प्रेम करनेवाले महात्माओं के पादारविंदों की स्तुति करो।

(विवरण- जैसे संस्कृत में चार वेद और उनके विवरण, षडंग कहलानेवाले शिक्षा, व्याकरण, छंद, निरुक्त, ज्योतिष व कल्प नामक छे शास्त्र रहते हैं, ठीक इस प्रकार द्राविडी में भी श्रीशठकोपसूरी के विरचित चार दिव्यप्रबंध (तिरुविरुतंम्, तिरुवाशिरियम्, पेरिय तिरुवन्दादि और तिरुवाय् मोळि माने सहस्रगीति) चार वेद रूपी हैं और श्री परकालसूरी के द्वारा अनुगृहीत छे दिव्यप्रबंध-पेरियतिरुमोळि (बृहत्सूक्त), तिरुक्कुरुन्दाण्डकम्, तिरुवेळुकूत्तिरुक्कै, शिरियतिरुमडल्, पेरिय तिरुमडल्, व तिरुनेडुन्दाण्डकम् षडंगरूपी हैं। अर्थात् पूर्वोक्त चार दिव्यप्रबंधों में सूचित अर्थ ही श्री परकालसूरी के इन छे ग्रंथों में सविस्तर उपवर्णित हैं। अत: ऐसे विलक्षण वैभववाले श्री परकालसूरी के अवतार से पवित्र बने हुए इस वृश्चिक मास के कृत्तिकानक्षत्र का वैभव भी अपार है। यह वैभव ठीक जानकर इसकी प्रशंसा करनेवाले महात्माओं के श्रीपादों की स्तुति करना हमारे योग्य काम है।)...(९)

श्रीपाणनाथ सूरी का अवतार-समय बताना

**कार्त्तिकैयुरोहिणिनाळ् काण्मिनिन्नु काशिनियीर् *
वाय्त्त पुहळ् पाणर्वन्दुदिप्पाल् * आत्तियर्हळ्
अन्बुडने तान् अमलनादिपिरान् कत्तदर्पिन् *
नन्गुडने कोण्डाडुम् नाळ् ।।१०।।**

**अद्योर्जमासि ननु रोहिणितारका सा यस्यामवातरदसौ मुनिवाहनार्य:।
एतत्कृतावमलनादिपिरान्प्रबन्धे रज्यद्भिरास्तिकजनैर्दिनमद्य लाल्यम्।।१०।।**

हे भूलोकनिवासियो ! आजका दिन वृश्चिकमास में रोहिणी नक्षत्र है। महायशस्वी तिरुप्पाणाळ्वार (श्रीपाणनाथसूरी) का अवतार दिन

होने, और आस्तिक जन (इनके अनुगृहीत) 'अमलनादिपिरान्' नामक दिव्यप्रबंध का सप्रेम अध्ययन कर प्रसन्न होने के कारण यह दिन विशेष प्रशंसा का पात्र बन रहा है । (विवरण- वृश्चिकमास रोहिणी नक्षत्र के दिन श्री पाणनाथसूरी का अवतार हुआ। इनके अनुगृहीत दिव्यप्रबंध का नाम है''अमलनादिपिरान्'' (जो पहले हजार का उपांत्य प्रबंध होता है।) आस्तिक लोग इस दिव्यग्रंथ का सादर अध्ययन करते हुए इस दिनकी की खूब प्रशंसा करते हैं। उर्जमासि - कार्तिक (वृश्चिक) मास में ।...(१०)

श्रीभक्तांघ्रिरेणुसूरी का अवतारदिन बताना

मन्निय शीर्मार्हिळियिल् केट्टैयिन्नु मानिलत्तीर् *
एन्निदन्नुक्केत्तमेनिलुरैक्केन् * तुन्नुपुहळ्
मामरैयोन् तोण्डरडिप्पोडियाळ्वार् पिरप्पाल् *
नान्मरैयोर् कोण्डाडुम् नाळ् ।।११।।

ज्येष्ठाऽद्य मासि धनुषि प्रथिमा कुतोऽस्या: पृच्छ्येत चेदिति जना: कथयाम्यहं व:।
विप्रेन्द्रभक्तपदरेण्ववतारयोगात् त्रैविद्यवृद्धबहुमानपदं शुभाह:।।११ ।।

हे विशाल भूतलनिवासियों ! आज का दिन श्रेष्ठ धमुर्मास में ज्येष्ठानक्षत्र का है। क्यों आप पूछेंगे कि आजकी कौनसी महिमा है? तो बतावूंगा, सुन लीजिए । यह दिन श्रेष्ठयशवाले परमवैदिक तोण्डरडिप्पो-डियाळ्वार (श्री भक्तांघ्रिरेणुसूरी) के अवतार के कारण वैदिकों को प्रशंसनीय है। ...(११)

श्री भक्तिसारसूरी का अवतारदिन बताना

तैयिल् मखमिन्नु धारणियीरेत्तम् * इन्दत्तैयिल् मखत्तुक्कु च्चात्तुहिन्नेन् * तुय्यमदि
पेत्त मळिशैप्पिरान् पिरन्दनाळेन्नु * नत्तवर्हळ् कोण्डाडुम् नाळ् ।।१२।।

तारां जना:! श्रृणुत तैषमघा किलाद्य तस्या ब्रुवेऽहमतिशांयिमहानुभावम्।
लब्धप्रसन्नमतिवैभवभक्तिसारदिव्यावतारदिवसोऽयमभिज्ञलाल्य: ।।१२।।

हे धरातलवासियों ! आज का दिन मकर मास में मघा नक्षत्र है। अब इस मकर-मघा का वैभव बतावूंगा (सुनिए)। यह परिशुद्ध ज्ञान प्राप्त करनेवाले तिरुमळिशैयाळवार (श्री भक्तिसार सूरी) का अवतार दिन महातपस्वियों से प्रशंसनीय है। (विवरण- पेयाळवार की कृपासे प्रकृत तिरुमळिशैयाळ्वार ने जो श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त किया था, उसकी सूचना करता है यह विशेषण ''परिशुद्ध ज्ञान प्राप्त करनेवाले ।'' (संस्कृतश्लोक में) तैषमघा-पुष्य मासका मघानक्षत्र।)...(१२)

श्रीकुलशेखर सूरी का अवतार समय बताना

माशिप्पुनर्पूशम् काण्मिनिन्नु मण्णुलहीर् * तेशित्तिबसत्तुक्के देन्निल् * पेशुहिन्नेन्
कोल्लिनगर्कोन् कुलशेखरन् पिरप्पाल् * नल्लवर्हळ् कोण्डाडुम् नाळ् ।।१३।।

कुम्भे पुनर्वसुभमध्य विलोकयध्वं तेज: किमह्न इति चेदहमस्य वक्ष्ये।
कोल्लीपुरीशकुलशेखरजन्मयोगात् श्लाघापदं भवति तारमिदं बुधानाम्।।१३।।

हे भूमंडलनिवासियों ! आज का दिन कुंभमासका पुनर्वसु नक्षत्र है । अगर पूछा जाय कि इस दिवस की कौनसी महिमा है, तो कहूंगा । कोल्लिनामक नगर के अधिपति श्री कुलशेखर आळ्वार का अवतार-दिन होनेके कारण, यह दिन सत्पुरुषों की प्रशंसा का पात्र है।...(१३)

श्रीशठकोपसूरी का अवतार दिन बताना

एरार् वैगाशि विशाखत्तिनेत्तै * पारोररिय प्पहर्हिन्नेन् * शीरारुम्
वेदन्तमिळ् शेय्द मेय्यनेळिल् कुरुहै * नाथनवतरित्त नाळ् ।।१४।।

आख्यामि चारुतरमाधवमासि राधातारानुभावमवनीजनबोधनाय।
द्रष्टुस्त्रयीं द्रविडत: कुरुकेश्वरस्य दिव्यावतारदिवसोऽद्य हि सत्यवाच:।।१४।।

समस्त भूतलनिवासियों की जानकारी के लिए अतिमनोहर वृषभमास में विशाखा नक्षत्र की श्रेष्ठता बतावूंगा। श्रेष्ठ संस्कृत वेदोंको द्राविडी में रचनेवाले, यथार्थवादी और सुंदर कुरुकापुरी के नाथ श्रीशठकोपसूरी का अवतारदिन यही है। (विवरण- संस्कृतपद्य में- त्रयीं द्रविडतः द्रष्टुः-वेदों का द्राविडी में साक्षात्कार पानेवाले । इसका यह भाव है कि संस्कृतवेद की भांति द्राविडवेद भी अपौरुषेय है और विश्वामित्र आदि मंत्रदर्शियों की भांति श्रीशठकोपसूरी, उस द्राविडवेद का साक्षात्कार करनेवाले हैं, नतु कर्ता । माधवमासि- वैशाखमास में । राधातारा विशाखानक्षत्र।)...(१४)

श्रीशठकोपसूरी, उनके अवतार दिन एवं उनकी श्रीसूक्तियों को अद्वितीय कहना

उण्डो वैगाशि विशाखत्तुक्कोप्पोरुनाळ् * उण्डो शठकोपर्क्कोप्पोरुवर् * उण्डो तिरुवाय्मोळिक्कोप्पु * तेन्कुरुकैक्कुण्डो * ओरु पार् तन्निलोक्कुमूर् ?।।१५।।

तारं किमस्ति बत माधवमासि राधातुल्यं किमस्ति शठकोपसमान एकः। किंवास्ति तद्द्रविडवेदसमः प्रबन्धः किंपत्तनं कुरुकया सममस्ति लोके।।१५।।

क्या वृषभमास के विशाखानक्षत्र के सदृश दूसरा कोई दिन होगा ? (नहीं) क्या श्रीशठकोपसूरी के समान दूसरा कोई मिलेगा? (नहीं) क्या तिरुवाय्मोळि के सदृश दूसरा कोई ग्रंथ मिलेगा? (नहीं) और इस विशाल पृथ्वीतल पर श्रीकुरुकापुरी के सदृश दूसरा कोई क्षेत्र होगा? (नहीं) (अर्थात् ये चारों वस्तु उपमानरहित, महामहिमावाली हैं।)...(१५)

श्रीभट्टनाथसूरी का अवतारदिन बताना

इन्रैप्पैरुमै अरिन्दिलैयो एळै नेञ्जे ! * इन्रैक्केन्नेत्तमेनिलुरैक्केन् * नन्रिपुनै पल्लाण्डु पाडिय नम्पट्टर्पिरान् वन्दुदित्त * नल्लानियिल् शोदिनाळ्।।१६।।

अद्य प्रभावमपि मानस ! किं न वेत्सि कोऽस्य प्रभाव इति चेत्प्रतिपादयामि।
पल्लाण्डुगानपरभट्टपते: प्रसूति: स्वाती किलाद्य मिहिरे मिथुनं प्रपन्ने।।१६ ।।

हे मूढ मन! क्या तुम आजके दिन का वैभव नहीं समझ सकोगे ? यदि पूछा जाय कि इसका कौनसा वैभव है, तो बतावूंगा, सुनो । श्रेष्ठ तिरुप्पलाण्डु दिव्यप्रबंध का गान करनेवाले हमारे श्री भट्टनाथसूरी का अवतार दिन है यही मिथून मास में स्वाती नक्षत्र का दिन। (विवरण - संस्कृतमें मिहिरे मिथुनं प्रपन्ने-सूर्य के मिथुन राशि पहुंचने पर; अर्थात् मिथुन मास में।)...(१६)

पुर्वोक्त दिन की ही प्रशंसा करना

मानिलत्तिल् मुन्नम् पेरियाळ्वार् वन्दुदित्त *
आनितन्निल् शोदियेन्नालादरिक्कुम् *
ज्ञानियर्क्कु ओप्पोरिल्लै इव्वुलहु तनिलेन्नु नेञ्जे *
एप्पोदुम् शिन्दित्तिरु ।।१७।।

भट्टाधिपोदय इहेत्यधिशुक्रमासं स्वातीं य आर्द्रहृदया मुहुराद्रियन्ते ।
तेषां न सन्ति सदृशा जगतीति चेतश्चिन्तामिमामनुकलं परिबृंहयेथा:(१७)

जब पूर्वकाल में हमारे नाथ पेरियाळ्वार इस भूतलपर प्रकट हुए, ऐसे मिथुन मास में स्वाती नक्षत्र का नाम सुनते ही, उसकी प्रशंसा करनेवाले ज्ञानियों के सदृश इस संसार में दूसरा कोई न होगा। हे मन ! तुम सदा इसी अर्थ का चिंतन किया करो। (१७)

पेरियाळ्वार शब्द का अर्थविवरण करना

मंगळाशासनत्तिल् मत्तुळ्ळ आळ्वार्हळ् * तंगळार्वत्तळवु तानन्नि * पोंगुम्
परिवाले विल्लिपुत्तूर पट्टर्पिरान् पेत्तान् * पेरियाळ्वारेन्नुम् पेयर् ।।१८।।

मंगलाशासन में जितनी अधिक प्रवृत्ती होती है, उसकी भक्ति उतनी बढ़ गयी है।

दूसरे आलवारों की अपेक्षा श्रीभट्टनाथसूरी की मंगलासनप्रवृत्ति कई गुणा अधिक है।

भक्तेष्वमीषु मधुशासनमंगलानामाशासनेऽनवधिका प्रियता यदस्य ।
भट्टेश्वरस्य पेरियोपपदं प्रतीतमाळ्वारिति प्रववृते तत एव नाम ।।१८।।

भगवान का मंगलाशासन करने के विषय में दूसरे आळ्वारों की अपेक्षा अत्यधिक प्रेम करने के कारण, श्रीविल्लिपुत्तूर में अवतीर्ण श्री भट्टनाथ सूरीने पेरियाळ्वार नामक बिरुद पाया। (विवरण- श्रीभट्टनाथसूरी को पेरियाळ्वार कहने की रूढि है। इस शब्द का अर्थ है महान आळ्वार। पेरियाळ्वार उम्र में सबसे बडे नहीं; क्योंकि उक्त प्रकार आळ्वारों की गोष्ठी में आप सातवें स्थान में विराजते हैं। एवं आपने सबसे बडा दिव्यप्रबंध भी नहीं रचा। इस विषय में श्री शठकोपसूरी व श्रीपरकालसूरी (जिनके हजार हजार गाथावाले ग्रंथ हैं) उनसे बडे हैं। फिर ये कैसे बडे हो गये? इस प्रश्नका उत्तर प्रकृत गाथा में दिया जा रहा है। श्रीवचनभूषण दिव्यशास्त्र में बताया गया है कि भगवान के प्रति अनहद प्रेम करनेवाले भक्तलोग, कदाचित् उस प्रेम से अंध-से बनकर, उसके फलतया उनकी सुकुमारता देखकर अथवा सोचकर और उनके ज्ञान शक्त्यादिगुण भूल कर, उस भूल से कलुषितचित्त होकर, यों मानते हुए कि पापियों से भरे हुए इस संसार में, भगवान को दुष्टों की नजर के शिकार बनना पडेगा, उन्हें इस आपत्ति से बचाने की वाचिक अथवा कायिक प्रवृत्ति करने लगते हैं। इस प्रवृत्ति का नाम ही मंगलाशासन है। समझना चाहिए कि यही सच्चे प्रेमकी कसौटी है। इससे यह अर्थ सिद्ध होता है कि जिसे मंगलाशासन में जितनी अधिक प्रवृत्ति होती है, उसकी भक्ति उतनी बढ गयी है। इस दृष्टि से यदि सभी आळ्वारों की परीक्षा की जाय, तो यह स्पष्ट होता है

कि दूसरे आळ्वारों की अपेक्षा श्री भट्टनाथसूरी की मंगलाशासनप्रवृत्ति कई गुण अधिक है। अत: इनका भगवद्विषयक प्रेम भी अत्यधिक सिद्ध हुआ । बस, इसी कारण से आपको 'पेरियाळ्वार' बिरुद मिला।)।।१८।।

तिरुप्पल्लाण्डु दिव्यप्रबंध के सबसे प्रथम होने का कारण बताना

कोदिलवामाळ्वार्हळ् केरुकलैक्केल्लुम् * आदि तिरुप्पल्लाण्डानदुवुम् * वेदत्तु क्कोमेन्नुमदु पोल् उळ्ळदुकेल्लाम् शुरुक्काय् * तान् मंगळमादलाल् ।।१९।।

अन्यस्य भक्तनिवहस्य निबंधनानामेतत्कृतादिमनिबंधनमादिरासीत् । तत्सारसंग्रहतयाऽपि च मंगलानामापादनात् प्रणववन्निखिलागमानाम्।।१९ ।।

चार हजार दिव्यप्रबंधशें की श्रेणी में सबसे पहला स्थान ''तिरुप्पल्लाण्डु'' प्रबंध को मिला है।

समस्त आळ्वारों के रचे हुए दोषरहित सभी दिव्यप्रबंधों की श्रेणी में ''तिरुप्पल्लांण्डु'' प्रबंध के प्रथम होने का कारण यही है कि समस्तवेदों के लिए प्रणव की भांति यह ग्रंथ समस्त अर्थों का संग्रह होकर मंगलरूप भी रहता है। (विवरण- चार हजार के रूप में विभक्त दिव्यप्रबंधों में सबसे पहला स्थान पेरियाळ्वार के रचे हुए ''तिरुप्पल्लाण्डु'' नामक मंगलाशासन प्रबंध को मिला है। एवं दूसरे चाहे जिस प्रबंध का पाठ किया जाय, पहले इस ''तिरुप्पल्लांण्डु'' का पाठ करने का भी नियम रहता है। इसका कारण यह कि यह दिव्यग्रंथ दूसरे समस्त दिव्यप्रबंधों में उपवर्णित समस्त सदर्थों का सारसंग्रहरूप और मंगलमय है। इस विषय में एक सुंदर दृष्टांत है प्रणव, अथवा ओंकार । वेदपाठ करनेवाले प्रारंभ में प्रणव का ही उच्चार करते हैं; क्योंकि यह

प्रणव समस्त वेदार्थों का संग्रह है और मंगलकारक भी है। समझना चाहिए कि इसी न्याय से दिव्यप्रबंध पाठ के समय पहले तिरुप्पल्लाण्डु का पाठ होना आवश्यक व उचित है।।).... (१९)

तिरुप्पल्लाण्डु व पेरियाळ्वार को अद्धितीय बताना

उण्डो तिरुप्पल्लाण्डुक्कु ओप्पदोर् कलैतान् *
उण्डो पेरियाळ्वार्क्कोप्पोरुवर् * तण्डमिळ्नूल्
शेय्दरुळुमाळ्वार्हळ् तम्मिल् अवर् शेय्कलैयिल् *
पैदल् नेञ्जे नी युणर्न्दुपार् ।।२०।।

श्रीभट्टनाथतदुपज्ञनिबन्धनाभ्यां कौ वा प्रबंधपुरुषौ सदृशौ भवेताम् ।
द्रर्ष्ट्वमीषु निखिलद्रविडागमानां तेष्वागमेषु च विचिन्तय चेत एतत्।।२० ।।

कोई भी आलवार पेरियालवार के समान नहीं होगा
और कोई भी प्रबंध तिरुप्पल्लाण्णु के सदृश नहीं होगा।

दिव्यप्रबंधो के गाता आळ्वारों के बीच में, क्या पेरियाळ्वार के समान दूसरा कोई होगा? (नहीं) और क्या उनके गाये हुए दिव्यप्रबंधों में दूसरा कोई ग्रंथ तिरुप्पल्लाण्डु के सदृश होगा?(नहीं) (विवरण- यद्यपि सभी आळ्वार विलक्षण भगवद्भक हैं और उनके सभी दिव्यप्रबंध अत्युत्तम भक्तिसाहित्य हैं। तथापि दूसरा कोई भी आळ्वार पेरियाळ्वार के समान नहीं होगा और कोई भी प्रबंध तिरुप्पल्लाण्डु के सदृश नहीं होगा । ये दोनों परमविलक्षण हैं।)...(२०)

श्रीगोदादेवी, श्रीमधुरकविसूरी और श्रीरामानुज स्वामीजी, इनके अवतार दिन बताने की प्रतिज्ञा करना

आळ्वार् तिरुमगळाराण्डाळ् *
मधुरकवियाळ्वार्यतिराजरामिवर्कळ् * वाळ्वाह

वन्दुदित्त मादंगळ् नाळकळ् तम्मिन् वाशियैयुम् *
इन्दवुलहोर्क्कुरैप्पोम् याम् ।।२१।।

श्रीविष्णुचित्तदुहितु र्जगतां जनन्या: प्रख्यावतो मधुरपूर्वकवेश्च नाम्ना।
रामानुजस्य करुणामृतवारिराशे र्मासेन साकमवतारदिनं ब्रवीमि ।।(२१)

अब हम, लोकोज्जीवनार्थ यहां अवतार किये हुए, आळ्वार (माने पूर्वोक्त पेरियाळ्वार, अथवा दसों आळ्वारों) की सुपुत्री श्री गोदादेवी, श्री मधुरकविसूरी और श्री रामानुज स्वामीजी, इन तीनों के अवतार मासों व नक्षत्रों का वैलक्षण्य भी, इसलोक के निवासियों को बतावेंगे । (विवरण- दूसरे आळ्वारों की भांति स्वयं भी दिव्यप्रबंधों के गायक होने के कारण श्री मधुरकविसूरी और गोदादेवी उनकी गोष्ठी में प्रवेश पाते हैं। अत एव इनको भी मिलाकर ''बारह आळ्वार'' कहने की रूढि

श्रीरामानुज स्वामीजी दिव्यप्रबंधों के विशेष प्रचारक थे और पालक माता के रूप में भी जाना जाता है।

है। कदाचित् ''दस आळ्वार'' कहने का कारण यह कि श्री मधुरकविसूरी दूसरे आळ्वारों की तरह भगवान की स्तुति न करते हुए अपने आचार्य श्रीशठकोपसूरी की ही स्तुति करने में उतर गये। श्री गोदादेवी ने यद्यपि साक्षात् भगवान की ही स्तुति की; तथापि भगवान की पटरानी होने के कारण भक्तों के परम पूज्य उनको दुसरे भक्तों के साथ एक श्रेणी में बिठाने में आचार्य संकोच पाते हैं। अत: इन दोनों को छोडकर दस आळ्वार कहने की रूढि हुई । कैसे भी हो । दिव्यप्रबंधगातृत्वरूप माहात्म्य तो इनका भी है ही । अत: इनका अवातर-समय बताना आवश्यक हुआ। श्रीरामानुजस्वामी न तो कभी आळ्वार पुकारे गये; नवा किसी दिव्यप्रबंध के गायक थे; तथापि आप

दिव्यप्रबंधों के विशेषतया प्रचारक थे। सहस्रगीति के एक तनियन् पद्य में कहा गया कि आप उसके पालक माता है। एवं आपको लक्ष्यकर ''रामानुजनूत्तंदादि'' नामक एक दिव्यप्रबंध भी अवतीर्ण है। अतः आळ्वारों के साथ उनका भी कीर्तन करना आवश्यक है। अत एव श्री पराशर भट्टर स्वामीजी ने, ''भूतं सरश्च'' इत्यादि पद्य में, यतीन्द्रमिश्रान् कहते हुए आळ्वारों के साथ उनको भी नमस्कार किया। इन कारणों से अब श्रीवरवरमुनिस्वामीजी भी इन तीन महात्माओं के अवतार दिन बताने की प्रतिज्ञा करते हैं। यद्यपि इनके साथ रामानुजनूत्तंदादि के गाथा श्रीरंगामृतकवि का भी कीर्तन करना आवश्यक था । परंतु दिव्यदेशों में कहीं उनके श्रीविग्रह की प्रतिष्ठा नहीं की गयी है। अतः उनका अवतारगीत गाने की प्रसक्ति भी नहीं होती। इस कारण से यहां पर उनका कीर्तन नहीं किया गया ।)...(२१)

श्रीगोदादेवी का अवतारदिन बताना

इन्नो तिरुवाडिप्पूरम् * एमक्काह बन्नो इंगाण्डाळवतरित्ताळ् * कुन्नाद
वाळ्वान वैकुंदवान् भोगन्तन्नै यिहळ्न्दु * आळ्वार् तिरुमगळाराय् ।।२२।।

मासे शुचौ प्रथमफल्गुनिका हि सैषा गोदाऽत्र खल्ववततार सुरक्षितुं नः।
भोगांश्च पारमपदानवमत्य नित्यान् भट्टेश्वरस्य महिता दुहिता भवन्ती ।।२२।।

भगवान की पटरानी विष्णुचित्तसूरी की पुत्री श्रीगोदम्बाजी ने परमपद के अखंड भोग को छोड़कर अवतार लेकर सब के उज्जीवनार्थ तिरुप्पावै दिव्यप्रबंध को प्रदान किया।

'तिरुवाडिप्पूरम्' (कर्कटक मासके पूर्वफल्गुनी नक्षत्र) का शुभदिन आज ही है। आण्डाळ् (श्री गोदादेवी) ने नित्यसंपद्युक्त श्री वैकुंठलोक का दिव्यभोग भी छोडकर, अज्ञानमय इस संसारमंडळ में,

पेरियाळ्वार की सुपुत्री होकर, हमारा संरक्षण करने के लिए ही आज के दिन अवतार लिया। (विवरण- हमारे जैसे संसारियों का उद्धार करने के लिए साक्षात् भगवान ने श्री कृष्णादिरूप में अवतार कर भगवद्गीतादि श्रेष्ठ शास्त्रों को प्रदान किया। परंतु उनसे पर्याप्त लाभ नहीं हुआ। अतः उनकी पटरानी ने भी परमपद का अखंड भोग छोडकर इस धरातल पर पेरियाळ्वार की सुपुत्री आण्डाळ् के रूप में अवतार लेकर सब के उज्जीवनार्थ, समस्त वेदों के सारभूत तिरुप्पावै दिव्यप्रबंध को प्रदान किया। इनका अवतारदिन कर्कटक मास में पूर्वफाल्गुनी नक्षत्र है, जो 'तिरुवाडिप्पूरम्' नामसे प्रसिद्ध है। संस्कृत पद्य में, शुचौ मासे आषाढ मास में । प्रथमफल्गुनिका पूर्वफल्गुनी। पारमपदान् भोगान् परमपद के भोगों को ।)... (२२)

आण्डाळ् व उनके अवतारदिन को अनुपम बताना

पेरियाळ्वार् पेण्बिळ्ळैयाय् * आण्डाळ्
पिरन्द * तिरुवाडि प्पूरत्तिन् शीर्मै *
ओरुनाळैक्कुण्डो मनमे युणर्न्दु पार् *
आण्डाळुक्कुण्डाहिल् ओप्पिदर्कुमुण्डु ।।२३।।

श्रीविष्णुचित्तदुहितृत्ववरेण्यगोदा
दिव्योदयेनमहिता शुचिफल्गुनीयम् ।
तत्तुल्यमस्ति किमु चिन्तय चित्त !
तारं गोदोपमा यदि भवेत्तदिदं तदा स्यात् ।।२३।।

पेरियाळ्वार की सुपुत्री आण्डाळ् के अवतारदिन इस तिरुवाडिप्पूरम् की महिमा क्या दूसरे किसी दिन को मिल सकेगी? हे मन ! तुम इस बातका चिंतन करो । यदि आण्डाळ के सदृश व्यक्ति

मिलेगी, तो इसके सदृश दिन भी मिलेगा। (विवरण- जैसे आण्डाळ् के सदृश दूसरी व्यक्ती नहीं मिलेगी, ठीक इसी प्रकार उनके अवतारदिन तिरुवाडिप्पूरम् के सदृश दूसरा दिन नहीं मिलेगा। दुहितृत्वेन वरेण्या- दुहितृत्ववरेण्या) ... (२३)

आण्डाळ् का विशेष वैभव बताना

अञ्जुकुडिक्कोरुसंततियाय् * आळ्वार्कळ्
तम् शेयलै विञ्जिनिर्कुम् तन्मैयळाय् * पिञ्जाय्
पळुत्ताळैयाण्डाळै पत्तियुडन् नाळुम् * वळुत्ताय् मनमे महिळ्न्दु ।।२४।।

बंहीयस: प्रणयतो भगवत्यजस्त्रमस्थानरक्षणभयाकुलवंशजाताम्।
भक्तानमून् निजगुणैरतिवर्तमानां बाल्येऽपि पक्वचरितां भज चित्त! गोदाम्।।(२४)

दूसरे आलवार धीरे-धीरे भगवद् भक्त बने, श्रीगोदमम्बाजी तो अवतार काल से ही परिपक्व भक्तिवाली थीं।

(अत्यंत प्रेम के मारे भगवान को भी अपाय होने का भय करनेवाले आळ्वारों की एकमात्र पुत्री होकर अवतार करती हुई, उन आळ्वारों के स्वभाव से भी परे रहनेवाली, (अर्थात् आळ्वारों से भी श्रेष्ठ स्वभाववाली) और बाल्य में ही परिपक्व प्रेमवाली आण्डाळ् की, हे मन ! तुम आनंद व भक्ति के साथ नित्य स्तुति करो। (विवरण- संप्रदायवृद्धों का कहना है कि आण्डाळ् दसों आळ्वारों की (ज्ञान) पुत्री हैं। इन आळ्वारों का यह विलक्षण नाम कहा जा रहा है कि ''भीरु'' अथवा भयाक्रांत होनेवाले। असीम प्रेमके परवश होकर उससे अपना विवेक खोकर अस्थाने भयशंका करना सभी आळ्वारों का स्वभाव है। अत: इनको भीरु कहते हैं। आण्डाळ् का भगवत्प्रेम, इन आळ्वारों के प्रेमकी अपेक्षा कई गुन अधिक है; यह अर्थ तिरुप्पावै टीका की

अवतारिका में ठीक उपवर्णित हैं। एवं दूसरे आळ्वार धीरे धीरे ही भगवद्भक्त बने; आण्डाळ् तो अवतार काल से ही परीपक्व भक्तिवाली थीं। इन कारणों से इनका वैभव वाचामगोचार है। अत: इसका नित्यानुसंधान करना हमारा कर्तव्य है।) .... (२४)

श्रीमधुरकविसूरी का अवतारदिन बताना

**एरार् मधुरकवि इव्वुलहिल् वन्दुदित्त *
शीरारुम् चित्तिरैयिल् चित्तिरै नाळ् * पारुलहिल्
मत्तुळ्ळवाळ्वार्हळ् वन्दुदित्त नाळ्हळिलुम् *
उत्तदेमक्केन्नु नेञ्जेयोर् ।।२५।।**

**यत्रोदभून्मधुरपूर्वकविर्महीयान् तामद्वितीयविभवां मधुमासि चित्राम्।
उक्तान्यभक्तनिवहोदयवासरान्न: क्षेमंकरीमनुदिनं हृदयावधेहि ।।२५ ।।**

श्रीमधुरकविसूरी ऐसे एक मात्र आचार्य भक्त हैं, जो कभी उन्हें छोड़कर भगवान की ओर नहीं झुकेंगें।

हे मन ! सुदृढ निश्चय कर लो कि अतिश्रेष्ठ श्रीमधुरकविसूरी के इस धरातल पर अवतार करने का यह मेष मास के चित्रानक्षत्र का दिन, भूलोक में दूसरे आळ्वारों के अवतार दिनों की अपेक्षा हमारे लिए अत्यंत कल्याणकारक है। (विवरण- श्रीवचनभूषण दिव्यशास्त्र के चौथे प्रकरण में श्रीमधुरकविसूरी की यह विशेषता बताई गयी है कि, जब कि दूसरे आळ्वार प्राय: भगवान की ही स्तुति करते हुए, कदाचित् (जब उनकी कृपा न मिलती हो तब) भगवद्भक्तों की (अथवा आचार्य की) स्तुति करने में उतरते हैं; (अर्थात् उनको आचार्य में ''एकभक्ति'' नहीं है) तब श्रीमधुरकविसूरी ऐसे एकमात्र आचार्य के भक्त हैं, जो कभी उन्हें छोडकर भगवान की ओर नहीं झुकेंगे । अत: ऐसे विलक्षण

आचार्यभक्त इनका अवतारदिन हमारे लिए परमकल्याणकारक है।)... (२५)

मधुरकवियाळ्वार के प्रबंध को दिव्यप्रबंधों के अंतर्गत बताना

**वाय्त्त तिरुमंतिरत्तिन् मत्तिममाम् पदम्पोल् *
शीर्त्तमधुरकवि शेय्कलैयै * आर्तपुहळ्
आरियर्हळ् तांगळ् अरुळिच्चेयल् नडुवे *
शेर्वित्तार् तात्पर्यम् तेन्दु ।।२६।।**

**मन्त्राधिपे महति मध्यपदं यथाऽऽसीदेवं हि पूर्वगुरवो द्रमिडागमानाम् ।
आकूतमन्यजनदुर्ग्रहमत्र मत्वा मध्ये न्यधुर्मधुरपूर्वकवेः प्रबन्धम् ।।(२६)**

विशालयशवाले हमारे पूर्वाचार्य, हमारे योग्य श्रीमद-ष्टाक्षरमहामंत्र के मध्यभाग में विराजमान 'नमः' पद की भांति, मधुरकविसूरी के द्वारा विरचित (कण्णिनुण् शिरुत्ताम्बु नामक) दिव्यप्रबंध को, उसका तात्पर्य समझकर, चारहजार दिव्यप्र बंधों से मिला दिया । (विवरण - केवल आचार्य की स्तुति करनेवाले, श्री मधुरकविसूरि के विरचित कण्णिनुण्-शिरुत्ताम्बु दिव्यप्रबंध को भगवान के स्वरूप रूप गुण वैभव आदि का वर्णन करनेवाले दूसरे दिव्यप्रबंधो के साथ मिला देने का औचित्य इस गाथा में बताया जा रहा है। यह भाव है आचार्यभक्ति, भगवद्भक्ति से विरुद्ध कोई दुसरी वस्तु नहीं, परंतु सुदृढ परिपक्व होनेवाली उसीका रूपांतर, अथवा सीमाभूमि है। अतः इसका प्रतिपादन करनेवाला ग्रंथ अवश्य ही भगवान के स्तोत्रग्रंथ से मिल सकता है। इस विषय का सु ंदर दृष्टांत है श्रीमंत्र के मध्यभाग में विराजमान 'नमः' पद । तथाहि श्रीमंत्र का अर्थ यह कि जीव

भगवतशेषत्व की चरम सीमा ही भागवतशेषत्व कहलाती है

भगवानका शेष है। नमः पद का तात्पर्यार्थ तो यह कि जीव भगवद्भक्तों का शेष है । ऊपर से देखनेवाले लोग कहेंगे कि इन दोनों अर्थों में मेल नहीं। परंतु हमारे आचार्य बताते हैं कि भगवतशेषत्व की सीमा ही भागवतशेषत्व कहलाती है; अतः दोनों में विरोध नहीं । कण्णिनुण्शिरुत्तांबु में भी यही न्याय लगता हैं।)...(२६)

श्रीरामानुजस्वामीजी का अवतार-दिन बताना

इन्नुलहीर् चित्तिरैयिल् एयून्द तिरुवादिरै नाळ् *
एन्नैयिलुमिन्निदनुक्केत्तमेन्तान् * एन्नवर्क्कु
च्चातुहिन्नेन् केण्मिन् यतिराजर् तम् पिरप्पाल् *
नात्तिशैयुम् कोण्डाडुम् नाळ् ।।२७।।

आर्द्राभमद्य खलु मासि मधौ मनोज्ञे को वाऽन्यतोऽस्य गरिमेत्यनुयोगकृद्भ्यः।
वक्ष्ये यतीश्वरसमुद्भववैभवेन तारं तदेतदखिलैः परिलालनीयम् ।।२७।।

श्रीरामानुज स्वामीजी का उपकार आलवारों के उपकार की अपेक्षा कई गुण अधिक है।

हे लोकनिवासियों । आज मेष मास में श्रेष्ठ आर्द्रा नक्षत्र है। यदि पूछा जाय कि दूसरे दिनों से इसकी क्या विशेषता है, तो कहूंगा, सुन लीजिए । यह तो यतिराज श्रीरामानुज स्वाभीजी के अवतार के हेतु चारों दिशाओं में खूब संस्तुत दिन है।।...(२७)

आळ्वार्हळ् तांगळ् अवतरित्त नाळ्हळिलुम् *
बाळ्वान नाळ् नमक्कु मण्णुलहीर् *
एळ्पारु मुय्य यतिराजरुदित्तरुळुम् *
चित्तिरैयिल् शेय्य तिरुवादिरै ।। (२८)

दिव्योदयर्क्षनिवहाच्छठजिन्मुखानां नक्षत्रमेतदधिकं कुशलावहं नः।
आर्द्राह्वयेन विदिते मधुमासभाजि यत्राविरास भगवान् यतिसार्वभौमः।।२८।।

हे भूलोकनिवासियों ! समस्त आळ्वारों के अवतारदिनों की अपेक्षा हमारे लिए अधिकतर कल्याणकारक दिन यही है कि समस्त लोकों का संरक्षण करने के लिए श्रीरामानुज स्वामीजी ने जब अतवार किया, ऐसा मेषमास का आद्रा नक्षत्र । (विवरण- दिव्यप्रबंधों को प्रदान करनेवाले पूर्वोक्त सभी आळ्वार अवश्य ही हमारे लिए बहुत उपकारक हैं। तथापि श्री रामानुज स्वामीजी का किया हुआ उपकार उससे कई गुन अधिक है। क्योंकि इन्होंने उन दिव्यप्रबंधो के मूल पाठ और सच्चे अर्थ का इतना प्रचार किया, कि हमारे जैसे अल्पज्ञ भी आज उनका अध्ययन कर आत्मोद्धार पा सकते हैं। यदि श्रीरामानुज स्वामीजी इस विषय में इतना कष्ट न उठाते तो हमें यह भाग्य सर्वथा नहीं मिलता। अत: श्रीरामानुज स्वामीजी का उपकार सबसे अधिक हुआ। इस कारण से उनका अवतारदिन भी दूसरों से श्रेष्ठ होता है।)...(२८)

श्रीरामानुज स्वामीजी का वैभव

एन्दै यतिराजर् इव्वुलहिलेन्तमक्का
वन्दुदित्त नाळेन्नुम् वाशियिनाल् * इन्द
त्तिरुवादिरै तन्निन् शीर्मैं तने नेञ्जे ! *
ओरुवामलेप्पोळुदु मोर् ।।२९।।

अस्मद्गुरोर्यतिपते: करुणाम्बुराशेस्त्राणाय नो भुवि लसद्भवतारकेति ।
आर्द्राभवैभवमनन्यसमानमेतद्वेलासु चित्त ! निस्विलास्वनुसंदधीथा:।।२९।।

श्रीरामानुज स्वामीजी परमपद में भगवान की नित्यसेवा करते हुये ब्रह्मानंद भोगनेवाले साक्षात शेषजी हैं।

हे मन! हमारे गुरुजी श्री रामानुज स्वामीजी ने हमारे उद्धार के लिए आज के दिन इधर अवतार लिया; इस कारण से तुम सर्वदा इस आर्द्रा नक्षत्र के वैभव का चिंतन करो। (विवरण - श्रीरामानुज

> **श्रीरामानुज स्वामीजी परमपद के अखण्ड भोग को छोड़कर संसारीयों के उद्धार हेतु अज्ञानांधकारपूर्ण इस पापी संसार में अवतार लिया ।**

स्वामीजी, अपने पुण्यपापों के हेतु इस संसार में बारबार जन्म लेनेवाला हमारे जैसा कोई साधारण मानव नहीं; किंतु परमपद में भगवान की नित्यसेवा करते हुए ब्रह्मानंद भोगनेवाले साक्षात् शेषजी हैं। ऐसे आप हम पापिंयों पर बहुत कृपा करते हुए, हमारा उद्धार करने के लिए उस विलक्षण परमपद का भोग छोडकर अज्ञानांधकारपूर्ण इस पापी संसार में अवतीर्ण हुए । अत: आपकी यह महिमा जानकर आपके अवतार दिन की प्रशंसा करना हमारा कर्तव्य है।) ...(२९)

प्रथम आळ्वार, श्रीकलिवैरिसूरि और श्रीपाणनाथ सूरियों के अवतारस्थल बताना

एण्णरुम् शीर् पोय्गै मुन्नोर् इव्वुलहिल् तोन्नियवूर् *
वण्मैमिहु कच्चि मल्लै मामयिलै * मण्णियिनीर्
तेगुंम् कुरैयलूर् शीर्कलियन् तोन्नियवूर् * ओंगु मुरैयूर् पाणनूर् ।।३०।।

एतास्सर:प्रमुखजन्मभुवो हि काञ्ची मल्लौ मयूरनगरी, कलिवैरिणस्तु ।
जन्मस्थळी कुरैयलूरिति विश्रुता भूरुत्पत्तिभूमिरुरैयूर्मुनिवाहनस्य।।३०।।

असंख्यशुभगुणों से परिपूर्ण सरोयोगी, भूतयोगी व महादाह्व-ययोगियों के इस भूतल पर अवतार स्थल क्रमेण सुंदर कांचीपुरी, तिरुक्कडल्मल्लै और (मदरास शहरके अंतर्गत) मयिलापुरी होते हैं। मण्णिनामक नदी का जल जहां बहता है ऐसा कुरैयलूर् नामक नगर महावैभववाले श्री कलिवैरि सूरी का अवतारस्थल है; और श्रेष्ठ उरैयूर (जो श्रीरंगनगरी के पास विराजता है) तिरुप्पाणाळ्वार का अवतारस्थल है।)...(३०)

तोण्डरडिप्पोडियाळ्वार व कुलशेखर आळ्वारों के अवतार स्थल बताना

तोण्डरडिप्पोडियार् तोन्नियवूर् तोल्पुगळ्शेर ✻
मण्डंगुडियेन्बर् मण्णुलहिल् ✻ एण्डिशैयुम्
एत्तुम् कुलशेखरनूरेन वुरैप्पर् ✻
वाय्त्त तिरुवञ्जिक्कळम् ।।३१।।

पृथ्व्यां हि भक्तपदरेण्ववतारभूमिर्मण्डंगुडीति नगरी महिता प्रतीता।
विख्यातकीर्तिकुलशेखरजन्मदेश: प्रख्यावती निचुलनामपुरीं जगत्याम्।।३१।।

शाश्वतकीर्तिवाले तिरुमण्डंगुडि नामक क्षेत्र को तोण्डरडिप्पो-डियाळ्वार का अवतारस्थळ कहते हैं। और तिरुवञ्जिक्कळम् को आठों दिशाओं में संस्तूयमान कुलशेखर आळ्वार का अवतारस्थल कहते हैं। (विवरण- तिरमण्डंगडिक्षेत्र, चोलदेश के अंतर्गत पुळ्ळम्पूदंगडि नामक दिव्यदेशके पास विराजता है। तिरुवञ्जिक्कळम् तो केरलदेशमें है।)...(३१)

तिरुमळिशैयाळ्वार, नम्माळ्वार व पेरियाळ्वारों के अवतारस्थल बताना

मन्नुतिरुमळिशै माडत्तिरुक्कुरुगूर् ✻
मिन्नुपुगळ् विल्लिपुत्तूर् मेदिनियिल् ✻ नन्नेरियोर्
एय्न्द भक्तिसारर् एळिल् मारन् पट्टर्पिरान् ✻
वायन्दुदित्त वूर्गळ् वहै।।३२।।

मान्या पुरी मळिशयित्यभिधानरम्या प्रार्थ्या जनस्य कुरुकाऽपि च विल्लिपुत्तूर् ।
श्रीभक्तिसार-शठशातन-विष्णुचित्तजन्मस्थलानि भुवनप्रथिताम्यमूनि ।।३२।।

इस भूतल पर नित्यश्रीवाला तिरुमळिशै (महीसार क्षेत्र जो मद्रासशहर से थोडी दूर में हैं,) महलों से परिवृत श्री कुरुकापुरी (आळ्वार तिरुनगरी) और उज्वलयशवाला श्री विल्लीपुत्तूर (श्री

धन्विनव्यपुर), ये तीनों क्रमश: सन्मार्गनिष्ठ महात्माओं से सेवित तिरुमळिशै आळ्वार, सुंदर नम्माळ्वार और श्रीभट्टनाथसूरी के अवतार स्थल हैं।...(३२)

आण्डाळ्, श्रीमधुरकविसूरी और श्रीरामानुज स्वामीजी के अवतारस्थल बताना

शीरारुम् विल्लिपुत्तूर् शेल्वत्तिरुक्कोळूर् * एरार् पेरुम्बूदूरेन्नुमिवै * पारिल् मदियारुमाण्डाळ् मधुरकवियाळ्वार् * यतिराजर् तोन्नियवूरिंगु ।।३३।।

**गोदासमुद्भवपुरं भुवि विल्लिपुत्तुर् कोळूर्पुरं मधुरपूर्वकवे: प्रसूति :।
रामानुजस्य करुणावरुणालयस्य मान्ये महोपपदभूतपुरेऽवतार: ।।(३३)**

इस भूलोक पर, श्रीविल्लिपुत्तूर, श्रीवैष्णवश्रीविभूषित तिरुक्कोळूर् (जो कि आळ्वारतिरुनगरी के पास है) और श्रीपेरुम्बूदूर (श्रीभूतपूरी) ये क्षेत्र क्रमश: ज्ञान (प्रेम) परिपूर्ण आण्डाळ्, मधुरकवि आळ्वार और यतिराज श्री रामानुजस्वामीजी के अवतारस्थल होते हैं।।...(३३)

दिव्यप्रबंधों की टींकाओं का विवरण करनेकी प्रतिज्ञा करना

**आळ्वार्हळेत्तम् अरुळिच्चेयलेत्तम् *
ताळ्वादुमिन्नि यवै ताम् वळर्त्तोर् * एळ्पारु
मुय्य अवर् शेय्द वियाक्कियैहळुळ्ळदेल्लाम् *
वैयमरियप्पहर्वोम् वाय्न्दु ।।३४।।**

**भक्तान् परांकुशमुखानपि तत्प्रबंधान् तद्वैभवार्हमुपलालयतां गुरूणाम् ।
उज्जीवनाय जगतामुदिता: प्रतीता दिव्यप्रबंधविषया: कथयामि टीका:।।(३४)**

आळ्वारों तथा उनके अनुगृहीत दिव्यप्रबंधो के वैभव को, उनकी कोई भी न्यूनता न हो, इस प्रकार बढानेवाले हमारे पूर्वाचार्यों और उनसे अनुगृहीत समस्त व्याख्यानों का अब इस प्रकार विवरण करेंगे कि

सभी मानव उनको ठीक समझ सकें।। (विवरण - दिव्यप्रबंधों पर नानाविध टीका लिखकर विशेषत: उनका तथा आळ्वारों का वैभव बढानेवाले हमारे पूर्वाचार्य हैं। अत: उनका भी वैभव जानना आवश्यक है।) ...(३४)

आळ्वारों तथा दिव्यप्रबंधों को परिपूर्ण मान देनेका उपदेश करना

आळ्वार्हळैयुम् अरुळिच्चेयल्कळैयुम् *
ताळ्वा निनैप्पवर्हळ् ताम् * नरकिल्
वीळ्वार्हळेन्नु निनैत्तु नेञ्जे येप्पोळुदुम्
नीयवर्पाल् * शेन्नणुह क्कूशित्तिरि ।।३५।।

भक्तेषु तेषु वकुलाभरणादिमेषु तत्तत्प्रबंधनिवहे कृतभक्तिमान्द्या:।
घोरे पतन्ति नरके तु समीपमेषां प्राप्तुं च भीपरिवृत: त्यज चित्त ! तांस्त्वम्।।३५।।

आलवारों और दिव्यप्रबंधों का अनादर करनेवाले नरक के भागी होंगे।

हे मन ! जो लोग आळ्वारों तथा दिव्यप्रबंधों को योग्य मान नहीं देते, वे ही नरक में प्रवेश कर दु:ख भोगेंगे । यह जानकर उन पापियों के समीप जानेसे भी संकोच करो । (विवरण- आळ्वारों तथा दिव्यप्रबंधों का वैभव ठीक जाननेवाले और बढानेवाले हमारे पूर्वाचायों का सिद्धांत यह है कि उनका अनादर करनेवाले नरक के भागी होंगे; अत: इनका सहवास करना भी आपत्कारक है।) ...(३५)

श्रीमन्नाथमुनि इत्यादि आचार्यो का वैभव बताना

तेरुळुत्तवाळ्वार्हळ् शीर्मैयरिवारार् * अरुळिच्चैयलैयरिवारार् * अरुळ्पेत्त
नाथमुनि मुदलाम् नम् देशिकरैयल्लाल् * पेदै मनमे उण्डो पेशु ।।३६।।

प्रज्ञावदग्रसरकेसरभूषणादिभक्तप्रभावमपि दिव्यनिबंधभूम्न:।
नाथादयो यदि परं न भवेयुरार्या: के वा विदन्ति हृदय ! त्वमिदं मनुष्व ।।३६।।

हे मूढ मन ! विवेचन कर बतावो कि, (नम्माळवार की) कृपा के पात्र श्रीमन्नाथमुनिस्वामीजी प्रभृति हमारे पूर्वाचार्यों के सिवा दूसरा कौन यथार्थज्ञाननिधि आळ्वारों का अथवा दिव्यप्रबंधों का वैभव जान सकता है। (विवरण - श्रीमन्नाथमुनिस्वामीजी श्री शठकोपसूरी की विशेष कृपा के पात्र हुए थे। अतः वे समस्त आळ्वारों तथा उनकी श्रीसूक्तियों का वास्तविक वैभव समझ सकते थे। उनकी शिष्यपरंपरा में प्रविष्ट दूसरे आचार्य भी उनके उपदेश से यह अर्थ जान सकते हैं। इनके सिवा दूसरा कोई भी यह नहीं समझेगा। केसरभूषण-वकुल भूषण; भूम्नः-द्वितीयाबहुवचन।)...(३६)

आचार्यपरंपरा में श्रीरामानुज स्वामीजी का विशेष वैभव बताना

ओराण्वळियाय् उपदेशित्तार् मुन्नोर् * एरारेतिराजरिन्नरुळाल् * पारुलहिल्
आशैयुडैयोर्क्केल्लाम् आरियर्काळ् कूरुमेन्नु * पेशि वरम्बरुत्तार् पिन् ।।३७।।

एकैकपूरुषसुरक्षितवंशरीत्या गुप्ता प्रपत्तिपदवी गुरुभिः पुराणैः।
रामानुजस्तु परया दयया दयालुः सीमामिमामतिययौ जगतां हिताय ।।३७।।

कृपामात्रप्रसन्नाचार्य माने केवल अपनी कृपा से ही शिष्यों पर प्रसन्न होनेवाले आचार्य।

(श्रीरामानुजस्वामीजी से) पहले के आचार्यों ने एकैक पुरुषक्रम से सांप्रदायिक अर्थों का उपदेश किया; उनके बाद महात्मा श्रीरामानुज स्वामीजी ने अपनी विशेष कृपा से, शिष्यों को यह आज्ञा देकर कि, ''हे आर्यजनो ! इस भूतल पर जानना चाहनेवाले सभी मानवों को इन अर्थों का उपदेश दीजिए'', पूर्वाचार्यों का उक्त नियम तोड डाल दिया। (विवरण - पिछली गाथा में आचार्यों का प्रसंग आने से, उन आचार्यों

की गोष्ठी के नायकभूत, करुणासागर श्री रामानुज स्वामीजी की विशेषता का वर्णन, अब दो गाथाओं से किया जायेगा। श्रीरामानुज स्वामीजी का एक असाधारण बिरुद है 'कृपामात्रप्रसन्नाचार्य', माने केवल अपनी कृपा से ही शिष्यों पर प्रसन्न होनेवाले । इसके बदले में पूर्वाचार्य 'अनुवृत्तिप्रसन्नाचार्य', माने शिष्य की अधिक सेवा से प्रसन्न होनेवाले कहलाते थे। श्रीस्वामीजी की जीवनी पढ़कर कर हम जान सकते हैं, कि उन्होंने श्रीगोष्ठीपूर्णस्वामीजी, श्री वररंगस्वामीजी इत्यादि आचार्यों के पास कितना कष्ट उठाकर उनसे उपदेश पाये। इससे आपने सोचा,'' इस नास्तिकता के जमाने में लोगों का मन स्वभावत: धर्म की ओर आकृष्ट होता ही नहीं। ऐसी अवस्थामें यदि भाग्यवशात् किसीका

अनुवृत्तिप्रसन्नाचार्य माने शिष्य की अधिक सेवा से प्रसन्न होनेवाले आचार्य।

मन धर्म जानना चाहें, परंतु आचार्य उसकी कठोर परीक्षा किये बिना सदर्थों का उपदेश नहीं देने का आग्रह करें, तो उसकी भावना सर्वथा नष्ट ही हो जायगी । अत: शिष्यकी परीक्षारूपी यह निर्बंध छोड देना चाहिए। हाँ, इतनी बात आवश्यक है कि आसुरी प्रकृतिवाले द्वेषियों से इन अर्थों को बचाना चाहिए। वस्तुतस्तु, उन्हें भी योग्य उपदेशों से आस्तिक व सात्विक बनाकर, क्रमश: सदर्थों का उपदेश देना चाहिए। अत: सांप्रदायिक रहस्यार्थ (माने मंत्र व मंत्रार्थ, दिव्यप्रबंधों के अर्थ इत्यादि) जानने के लिए अबसे वही अधिकारी होगा, जिसकी इच्छा हो।'' अत एव उन्होंने धर्मप्रचार करने के लिए अत्यधिक संख्यावाले (अर्थात् चौहत्तर) गादीपतियों की स्थापना की और उन्हें आज्ञा दी की,

''हे आर्यजन । आप लोग शिष्य की कठिन परीक्षा लिए बिना, उनकी इच्छा मात्र देखकर, उन्हें सदुपदेश दीजिए।'' इस आज्ञा के फलतया ही श्रीरामानुज स्वामीजी की शिष्यपरंपरा में प्रविष्ट आचार्यों ने दिव्यप्रबंधों व मंत्रों की टीका इत्यादि अनेक सांप्रदायिक रहस्य ग्रंथों की रचना की। श्रीरामानुजस्वामीजी से पहले के आचार्य तो परीक्षा में उत्तीर्ण एकैक शिष्य को ही इन अर्थों का उपदेश देते थे। यद्यपि उनके भी अनेक शिष्य थे। तथापि जान पडता है कि वे एक साथ दो शिष्यों को बिठाकर उपदेश नहीं देते; किंतु सबको अलग अलग ही देते थे। अत एव श्रीरामानुज स्वामीजी के पांचों आचार्य, सब श्री यामुनाचार्य स्वामीजी के शिष्य होते हुए भी, एकैक, एकैक विद्या ही जानते थे। इस पर शंका होगी कि ''पूर्वाचार्यों के इतना कठिन नियम रखने का कारण क्या था? क्या वे भी दयावान् नहीं थे?'' इसका प्रत्युत्तर यह कि वेदादि शास्त्र ही शिष्य की परीक्षा किये विना उपदेश करने का निषेध कर रहे हैं। भगवद्गीता के अंत में स्वयं भगवान ने आज्ञा की कि, ''इदं ते नातपस्काय'' इत्यादि। अनधिकारियों को दिये जानेवाला उपदेश व्यर्थ और कदाचित् आपत्कारक भी होगा । अतः इन शास्त्रों के अनुसार वे आचार्य परीक्षा में उत्तीर्ण शिष्य को ही उपदेश देते थे। फिर श्रीरामानुज स्वामीजी ने कैसे यह नियम तोडा? उन्होंने संसारी दुःखी मानवों पर अपनी दृष्टि डाली । वे तो केवल सांसारिक विषयों में ही आशा रखकर तदनुकूल ज्ञान प्राप्त करने में निरत थे; अतः वे किसी प्रकार आचार्य के पास जाकर उनकी परीक्षा में उत्तीर्ण होने में समर्थ नहीं थे। अतः उनका उद्धार होना अशक्य प्रतीत हुआ । परंतु परमदयालु श्री स्वामीजी उनको वैसे ही छोड देने को तैयार नहीं थे। उन्होंने कुछ न कुछ करके उनका

उद्धार करना चाहा । उसका एक मात्र उपाय था पूर्वोक्त नियम को ढीला करना । इससे बहुत लोग सांप्रदायिक अर्थों का उपदेश पाकर, कृतार्थ हो गये; फलत: श्री वैष्णव धर्म का खूब प्रचार भी हुआ। ऐसे कृपावान थे श्रीरामानुज स्वामीजी ।।...(३७)

श्रीरामानुजदर्शन कहने का कारण बताना

एम्बेरुमानार् दर्शनमेन्ने इदर्कु * नम्बेरुमाळ्
पेरिट्टू नाट्टिवैत्तार् * अम्बुवियोर्
इन्द दर्शनत्तै एम्बेरुमानार् वळर्त्त * अन्द चेयलरिकैक्का ।।३८।।

अस्योचितां परमवैदिकदर्शनस्य रामानुजार्यरचितोपकृतिं कृतज्ञ:।
रंगेश्वर: प्रथयितुं रचयाश्चकार रामानुजस्य मतमित्यभिधानमस्य ।।३८।।

श्रीरंगनाथ भगवान ने श्रीवैष्णवसंप्रदाय का नाम "श्रीरामानुज संप्रदाय" रखा।

इस धरातलवासी समस्त जनता को यह अर्थ ठीक बताते हुए कि, "श्रीरामानुज स्वामीजी ने इस श्रीवैष्णवसिद्धांत (माने विशिष्टाद्वैतदर्शन) को खूब बढाया, श्री रंगनाथ भगवान ने इसे 'श्रीरामानुज दर्शन' नाम रखा। (विवरण- हमारा श्रीवैष्णवसंप्रदाय 'श्रीरामानुज दर्शन' (दर्शन माने सिद्धांत अथवा संप्रदाय) नाम से पुकारा जा रहा है। यह नाम सुनकर कितने ही लोग यह शंका अथवा आक्षेप करते हैं कि यह संप्रदाय श्री रामानुज स्वामीजी का स्वकपोलकल्पित कोई नया संप्रदाय है, नतु अनादिसिद्ध वैदिक संप्रदाय परंतु यह भावना सर्वथा गलत है। क्योंकि अनादिकाल से ही यह संप्रदाय चल कर आया है। श्रीशठकोप सूरी इत्यादि आळ्वार और

श्रीमन्नाथमुनि स्वामीजी, श्रीमद्यामुनाचार्य स्वामीजी इत्यादि आचार्य स्पष्ट ही इस संप्रदाय के अनुयायी थे । अतः यह संप्रदाय श्री रामानुज स्वामीजी से कल्पित नहीं। परंतु उन्होंने बहुत प्रयत्न कर समग्र भारतवर्ष में इस सिद्धांत का स्वयं प्रचार किया और आगे भी अनंत काल तक इसका अटूट प्रचार होने का पर्याप्त प्रबंध किया । उनसे पहले इसका प्रचार बहुत कम था। बाद में ही यह सर्वत्र विशेष रूप से प्रचलित हुआ । अतः श्रीरंगनाथ भगवान ने सब को यह वृत्तांत बताते हुए इसका नाम रख दिया 'श्रीरामानुज दर्शन' । तथाच, पूर्वगाथा में श्रीस्वामीजी की अनहद कृपा का, और प्रकृत गाथा में आपके संप्रदाय प्रवर्तन चातुर्य का वर्णन किया गया ।) ...(३८)

सहस्रगीति के टीकाकारों के शुभनाम बताना

**पिळ्ळान् नञ्जीयर् पेरियवाच्चान्पिळ्ळै * तेळ्ळार् वडक्कु त्तिरुवीधिप्पिळ्ळै*
मणवाळयोगि तिरुवाय् मोळियैक्कात्त * गुणवाळरेन्नु नेञ्जे कूरु ।।३९।।**

**चन्द्रो यतीन्द्रजलधेः कुरुकाधिपार्यः श्रीमाधवो मुनिरुभावपि कृष्णसूरी ।
योगी च सुन्दरवरो हि सहस्रगाथाव्याख्या व्यधुर्हृदय !ताननिशं
भजेथाः।।३९।।**

हे मन ! तिरुक्कुरुहैप्पिरान् पिळ्ळान् (श्री कुरुकेश स्वामीजी), नञ्जीयर् (श्रीवेदान्तिस्वामीजी), पेरियवाच्चान् पिळ्ळै (श्री कृष्णपाद स्वामीजी), प्रसन्नज्ञानवाले वडक्कु त्तिरुवीधिप्पिळ्ळै (उत्तरवीथी श्रीकृष्णपाद स्वामीजी) और वादिकेसरी अळगिय मणवाळ जीयर् (श्री सुंदरजामातृमुनि स्वामीजी), कुल ये पांच आचार्य, टीकालेखनद्वारा सहस्रगीति की रक्षा करनेवाले महान हैं; यों मान कर हे मन ! तुम इनके वैभव की प्रशंसा करो । ...(३९)

उक्त आचार्यों के विषय में कृतज्ञता का प्रकाशन करना

मुन्दुरवे पिळ्ळान् मुदलानोर् शेय्दरुळुम् ✻
अन्द वियाक्कियैहळन्नाहिल् ✻ अन्दो
तिरुवाय् मोळिप्पोरुळै तेन्दुरैक्कवल्ल
गुरुवार् ✻ इक्कालम् नेञ्जे कूरु ।।४०।।

एतादृशठारिकृतगीतिसहस्रटिका:
क्लृप्ता न चेद्गुरुवरै: कुरुकेशमुख्यै:।
तस्य प्रबंधतिलकस्य हि हन्त भावं
जानन्ति केऽद्य हृदय ! त्वमुदीरयेथा:।।४०।।

हे मन ! तुम ही विचारकर कहो कि यदि पूर्वकाल में श्रीकुरुकेश स्वामीजी प्रभृति पूर्वोक्त आचार्यों से अनुगृहीत उन व्याख्यानग्रंथों का अवतार नहीं हुआ होता, तो आजकाल कौनसा आचार्य उस सहस्रगीति का गाढ विमर्श कर उसके सदर्थों का प्रवचन कर सकता । (अर्थात् पूर्वोक्त पांच महाचार्यों द्वारा विरचित टीकाओं का अध्ययन करने से ही आजकाल के आचार्य सहस्रगीति का सच्चा अर्थ समझकर दूसरों को उपदेश दे सकते हैं। अत: उक्त महानों का उपकार सत्य ही अपरिमित है।)...(४०)

षट्सहस्री टीका का अवतारक्रम बताना

तेळ्ळारुम् ज्ञानत्तिरुक्कुरुहैप्पिरान् पिळ्ळान् ✻
यतिराजर् पेररुळाल् ✻ उळ्ळारुम्
अन्बुडने मारन् मरैप्पोरुळैयन्नुरैत्तदु ✻
इन्बमिहु मारायिरम् ।।४१ ।।

निस्सीमनिर्मलधिया कुरुकाधिपेन लब्ध्वा प्रसादलहरीं यतिपुंगवस्य ।
गाथासहस्त्रविषया विहिता हि टीका संगृह्णती सकलमात्मनि षट्सहस्त्री ।।४१ ।।

अतिप्रसन्नज्ञानवाले तिरुक्करुहैप्पिरान् पिळ्ळान् नामक श्रीकुरुकेशस्वामीजी ने, श्रीरामानुज स्वामीजी की परमकृपा प्राप्त कर, गाढ प्रेमके साथ, जिस व्याख्यान के द्वारा उस समय श्रीशठकोपसूरी के वेद, सहस्रगीति के अर्थों का विवरण किया, वह रसघन आरायिरप्पडि, अथवा षट्सहस्री ग्रंथ है। (श्री रामानुज स्वामीजी की विशेष कृपा व दिव्याज्ञा पाकर, उनके सच्छिष्य श्री कुरुकेश स्वामीजी ने सहस्रगीति पर एक रसघन टीका लिखी, जो षट्सहस्री कहलाती है। इसमें लगभग छे सहस्र 'ग्रंथ' होते हैं। 'ग्रंथ' पुस्तकों की लंबाई का एक माप है। बत्तीस अक्षरों को (अर्थात् एक अनुष्टुप् श्लोक को) एक ग्रंथ कहते हैं। इस माप से उक्त सहस्रगीति टीका छे हजार अनुष्टुप् जितनी लंबी होने से षट्सहस्री कहलाती है। आगे के नवसहस्री इत्यादि नाम भी इसी प्रकार बने हैं।)...(४१)

नवसहस्री का अवतारक्रम बताना

तम् र्शीरै ज्ञानियर्हळ् ताम्पुहळुम् वेदांति ✻
नञ्जीयर् ताम् भट्टर् नल्लुरुळाल् ✻
एञ्जाद आर्वमुडन् मारन् मरैप्पोरुळै
याय्न्दुरैत्तदु ✻ एरोन्बदिनायिरम् ।।४२।।

प्रज्ञावतां निरवधिप्रथितात्मभूमा भट्टारकस्य दयया निगमन्तयोगी ।
यामाततान शठजिन्निगमस्य टीकां सा ग्रन्थतो नवसहस्रमिता समिन्धे।।४२।।

बडे ज्ञानियों से प्रशंसित दिव्यगुणवाले वेदान्ती नामक नञ्जीयर् स्वामीजी ने अपने गुरु श्रीपराशर भट्टार्य स्वामीजी की परम कृपा से, परिपूर्ण प्रीति पूर्वक श्रीशठकोपसूरी के वेद, सहस्रगीति के अर्थों का विवेचन कर जो टीका बनायी, वह मधुर नवसहस्री है ।)... (४२)

चौवीस हजार टीका का अवतारक्रम बताना

नम्बिळ्ळै तम्मुडैय नल्लुरुळालेविवियिड *
पिन् पेरियवाच्चान् पिळ्ळैयदनाल् *
इन्बा वरुपत्ति मारन् मरैप्पोरुळैच्चोन्नदु *
इरुपत्तु नालायिरम् ।।४३।।

लब्ध्वा कृपासमुदितं कलिवैरिदाससूरेर्निदेशमभयप्रदराजनामा ।
यत् क्लृप्तवान् विवरणं द्रविडागमस्य तद्ग्रन्थतस्त्रिगुणिताष्टसहस्रसंख्यम् ।।४३।।

नम्बिळ्ळै (श्री कलिवैरिदासगुरु) नामक अपने आचार्य की परमकृपामय आज्ञा पाकर, उसके अनुसार, पेरियवाच्चान्पिळ्ळै (श्री कृष्णपाद अथवा अभयप्रदराजगुरु) नामक आचार्य ने आनंदरूपी भक्ति से परिपूर्ण श्री शठकोप सूरी के अनुगृहीत द्राविडवेद, सहस्रगीति के अर्थों का विवरण करते हुए जो टीका लिखी वह इरुपत्तिनालायिरम् (चतुर्विंशतिसहस्री अथवा चौवीस हजार ग्रंथवाली) कहलाती है।...(४३)

छत्तीस हजार टीका का अवतारक्रम बताना

तेळ्ळियदा नम्बिळ्ळै शेप्पुनेरितन्नै *
वळ्ळल् वडक्कु त्तिरुवीधिप्पिळ्ळै *
इन्द नाडरिय मारन्मरैप्पोरुळै
नन्गुरैत्तदु * ईडु मुप्पत्तारायिरम् ।।४४।।

सूक्तीस्सुधाकरसखी: कलिवैरिदासनाम्नो गुरोस्समवलम्ब्य हि कृष्णपाद:।
यां द्राविडोपनिषदो विवृतिं चकार षट्त्रिंशता दशशतै: प्रमिता मता सा।।४४।।

परमोदार वडक्कुत्तिरुवीधिप्पिळ्ळै नामक श्रीकृष्णपाद स्वामीजी ने, अपने आचार्य नम्पिळ्ळै स्वामीजी से (प्रवचन के समय)

अतिविशदतया अनुगृहीत श्रीसूक्तियों के अनुसार, समस्त जनता को श्रीशठकोपसूरी के वेद, सहस्रगीति के अर्थ ठीक बताते हुए जो टीका लिखी, वह ईड्डु मुप्पत्तारायिरप्पडि (योग्य छत्तीस हजार ग्रंथवाली) कहलाती है।। (विवरण - श्री नम्बिळ्ळै गुरूजी के अनंत शिष्यों में दो प्रधान थे । दोनों का नाम श्रीकृष्णपादस्वामीजी था। उनमें से एकने गुरुजी की आज्ञा से पूर्वोक्त चौवीस हजार टीका लिखी। दूसरेने, दिन भर बडी सावधानी से गुरुजी का प्रवचन सुनकर, अपनी यादगारी के लिए, उन्हीं अर्थों को एक ग्रंथ के रूप में लिखा; यही ग्रंथ छत्तीस हजारवाली टीका कहलाती है। इसका 'ईडु' विशेषण दिया गया है। ईडु माने योग्य। अर्थात् यह मूलग्रंथ के योग्य माने अनुरूप व्याख्यान है । इन आचार्य को 'उदार' कहने का यह कारण है कि इन्होंने लोकोंको न केवल इस टीका का किंतु श्रीलोकाचार्यस्वामीजी व रम्यजामातृ स्वामीजी नामक दो अतिश्रेष्ठ आचार्यों को भी प्रदान किया। अर्थात् श्रीवचनभूषण इत्यादि अठारह श्रेष्ठ रहस्य ग्रंथों द्वारा समस्त जगत का संरक्षण करनेवाले श्रीलोकाचार्यस्वामीजी, और इनके छोटे भाई, आचार्य-हृदय इत्यादि कतिपय अत्यद्भुत ग्रंथों के कर्ता अळहियमणवाळप्पेरुमाळ् नायनार् नामक रम्यजामातृस्वामीजी, ये दोनों महान आचार्यसार्वभौम इन श्री कृष्णपाद स्वामीजी के सुपुत्र थे। अतः सहस्रगीति का श्रेष्ठ व्याख्यान, (जो भगवद्विषय पुकारा जाता है।) और उसके निगूढ अर्थों का प्रवचन करने में समर्थ दो आचार्यरत्नों का प्रदान करनेवाले इस महात्मा को 'उदार' कहना सर्वथा उचित है।) ... (४४)

द्वादशसहस्री टीका का अवतारक्रम बताना

अन्बोडळगिय मणवाळच्चीयर् * पिन्बोरुम् कत्तरिन्दु पेशुकैक्का * तम्पेरिय
बोधमुडन् मारन् मरैयिन् पोरुळ्ुरैत्तदु * एदमिल् पन्नीरायिरम् ।।४५।।

पश्चात्तनानपि जनाननुगृह्णता या रम्योपयन्तृमुनिना स्फुटवैभवेन ।
वृत्तिर्व्यधायि शठजिन्निगमस्य सेयं ग्रन्थैर्द्विषड्दशशतप्रमितैर्धिनोति ।।४५।।

वादिकेसरी अळगिय मळवाळ जीयर् नामक रम्यजामातृमुनींद्र ने, बाद में आनेवाले भी सप्रेम अध्ययन कर दूसरों को उपदेश दें, इस प्रकार, अपने महान ज्ञान से श्री शठकोप सूरी के वेद, सहस्रगीति के प्रतिपदार्थ के रूप में जो टीका लिखी, वह दोषरहित बारह हजार ग्रंथवाली टीका है। (विवरण- वादिकेसरी अळहिय मणवाळ जीयर् नामक महात्मा ने सहस्रगीति पर जो टीका लिखी है, वह मूलग्रंथ का शब्दार्थ जानने के लिए अत्यंत उपयुक्त है। परंतु इसमें कहीं कहीं पूर्वाचार्यव्याख्यानों से विरुद्ध अर्थ भी बताये गये हैं। इस बात की सूचना करने के लिए इस गाथा में स्वामीजी ने कहा ''अपने महान ज्ञान से।'' दूसरे टीकाकारों के बारे में आपने नियमेन कहा, ''अमुक आचार्य की कृपा से।'' तथा च इसका यह तात्पर्य हुआ की बारहहजार टीकाकार ने अपने आचार्य के द्वारा उपदिष्ट प्रकार की परवा नहीं करते हुए, अपनी स्वकीय बुद्धि के अनुसार यह ग्रंथ लिखा । तथापि प्राचीन ग्रंथकारों पर ऐसा स्पष्ट व्यंग्य करने के अनिच्छुक स्वामीजी उस टिका को विशेषण दिया ''दोषरहित'' ।...(४५)

पेरियवाच्चान्पिळ्ळै स्वामीजी का असाधारण वैभव बताना

पेरियवाच्चान्पिळ्ळै पिन्बुळ्ळवैक्कुम् तेरिय * वियाक्कियैगळ् शेय्वाल् * अरिय
अरुळिच्चेयल् पोरुळै आरियर्गट्किप्पोदु * अरुळिच्चेयलाय्त्तरिन्दु ।।४६।।

प्रायेण सम्यगितरद्रविडागमानां टीका: कृता यदभयप्रदराजनाम्ना ।
तेनैव तेषु गहनेषु मतिर्गुरूणां लोकोपदेशसमयेष्वधुनाऽस्ति रम्या ।।४६।।

पेरियवाच्चान्पिळ्ळै स्वामीजी ने, सहस्त्रगीति के सिवा दूसरे दिव्य प्रबंधों का भी विशद व्याख्यान लिखा है; अत: आज के आचार्य भी उन ग्रंथो के अध्ययन से दिव्यप्रबंधों के श्रेष्ठ अर्थ समझकर प्रवचन कर सकते हैं। (विवरण- उक्त प्रकार, सहस्त्रगीति के पांच व्याख्यान हो गये। दूसरे तीन हजारों पर तो एक मात्र पेरियवाच्चान् पिळ्ळै का व्याख्यान उपलब्ध है; अर्थात् चारों हजारों पर विशद व्याख्यान लिखने का वैभव एकमात्र इन आचार्य का है, नतु दुसरे किसीका । यदि यह व्याख्यान न होता, तो आजकाल का कोई भी विद्वान इन दिव्यप्रबंधों का अर्थ समझकर प्रवचन नहीं कर सकता । इस प्रकार इन महान आचार्य का वैभव अपार है।)... (४६)

थोडे थोडे प्रबंधों पर टीका करनेवाले आचार्यों के नाम बताना

नञ्जीयर् शेय्द वियाक्कियैगळ् नालिरण्डुक्कु *
एञ्जामै यावैक्कुमिल्लैये * तम् शीराल्
वैयगुरुविन् तम्बि मन्नु मणवाळमुनि *
शेय्युमवै तामुम् शिल ।।४७।।

केषांचिदेव विवृतिर्द्रविडागमानां वेदान्तिभिर्विरचिता न पुनस्समेषाम् ।
प्रज्ञाभरादवरजेन जगद्गुरोस्ता: सौम्योपयन्तृमुनिना कलिताश्च काश्चित् ।।४७।।

नञ्जीयर् स्वामीजी से अनुगृहीत व्याख्यान दो चार दिव्यप्रबंधों पर ही हैं; नतु सबके ऊपर । एवं श्रीलोकाचार्यस्वामीजी के छोटे भाई ने और वादिकेसरी अळगियमणवाळ जीयर् स्वामीजी ने भी थोडे प्रबंधों पर ही व्याख्यान लिखे हैं। (एकमात्र पेरियवाच्चान्पिल्लै स्वामीजी ने चारों

हजारों पर पूरा व्याख्यान लिखा है। दूसरा कोई भी नहीं। ये तीन महात्मा (१) नञ्जीयर् (२) श्री लोकाचार्यस्वामीजी के अनुज अऴगिय मणवाळ-प्पेरुमाळ् नायनार और द्वादशसहस्रीकार वादिकेसरी अऴगिय मणवाळ जीयर् दिव्यप्रबंधों में थोडे थोडे भागों के टीकाकार हैं। इससे यह अर्थ बताया जाता है कि उस समय में इनके सिवा दूसरा कोई दिव्यप्रबंध का टीकाकार नहीं हुआ।)...(४७)

ईडु मुप्पत्तारायिरप्पडि का प्रचारक्रम बताना

शीरार् वडक्कुत्तिरुवीधिप्पिळ्ळै * एऴुदेरार् तमिऴ् वेदत्तीडुतनै * तारुमेन वांगि मुन्नम्बिळ्ळै ईयुण्णिमाधवर्क्कु त्ताम् कोडुत्तार् * पिन्नदनै त्तान् ।।४८।।

तां कृष्णपादलिखितां शठवैरिवेदव्याख्यां ददस्व महतीमिति कृष्णपादात्। आदाय देशिकवर: कलिवैरिदास: प्रादत्त माधवगुरोर्दयमानचेता: ।।४८।।

नम्बिळ्ळै स्वामीजी ने उस समय महात्मा वडक्कुत्तिरुवीधिप्पिळ्ळै के विरचित 'ईडु' ग्रंथ को, ''यह मुझे दे दो'' कह कर उनसे लेकर, बाद में उसे ईयुण्णि माधवाचार्य स्वामीजी को दे दिया। (विवरण- यह अर्थ बताया गया कि सहस्रगीति के पूर्वाचार्य-विरचित पांच व्याख्यान है। परंतु इनमें सबसे विस्तृत, एवं परम रसभरित ईडु मुप्पत्तारायिरप्पडि नामक व्याख्यान ही मुख्यतया कालक्षेप में उपयुक्त किया जा रहा है; और 'भगवद्विषय' कहलाता है। अत: इसका प्रचारक्रम अब दो गाथाओं में बताया जायगा । पहले यह अर्थ बताया गया कि पेरियवाच्चान्पिळ्ळै स्वामीजी ने अपने गुरूजी नम्बिळ्ळै स्वामीजी की आज्ञा के अनुसार चौबीस हजार टीका लिखी। परंतु वडक्कुत्तिरुवीधिप्पिळ्ळै स्वामीजी ने उन गुरुजी की आज्ञा पाये विना ही केवल स्वानुभव के लिए, गुरूजी के

प्रवचन किये हुए अर्थों को ग्रंथरूप में लिख दिया । लिखनेके बाद उन्होनें उसे अपने गुरूजी को बताया गुरूजी (नम्बिळ्ळै स्वामीजी) ने पुस्तक खोलकर और देख कर कहा कि, ''गज सजाने की भांति यह ग्रंथ सहस्रगीतिका शोभन अलंकार है। तथापि मेरी अनुज्ञा पाये विना तुमने इसे क्यों लिखा? इसे मेरे पास रहने दो।'' इतना कह कर उन्होंने उस ग्रंथ को एक ओर रख दिया । उनका अभिप्राय था कि पेरियवाच्चान्पिळ्ळै स्वामीजी का चौवीस हजार टीका ही पर्याप्त है; उससे विस्तृत टीका की आवश्यकता नहीं रहती । कैसे भी हो । 'ईडु' ग्रंथ प्रचार पाये विना एक कोने में पडा रहा । उस समय वहां ईयुण्णि माधवाचार्य नामक एक महात्मा रहते थे, जो उक्त ग्रंथ की महत्ता जानकर उसका प्रचार करना चाहते थे। जब बहुत विनती करने पर भी नम्बिळ्ळै ने उन्हें यह ग्रंथ न दिया, तब उन्होंने सोचा कि इस विषय में भगवान से ही प्रार्थना करनी चाहिए । फिर उन्होने श्रीरंगनाथ भगवान के प्रदक्षिण प्रणाम प्रार्थना आदि करना प्रारंभ किया । इससे प्रसन्न भगवान ने एक दिन नम्पिळ्ळै को आज्ञा दी कि ''आप ईयुण्णि माधवाचार्य को अपने पास रखी हुई सहस्रगीति टीका दे दीजिए ।'' श्री स्वामीजी ने उस आज्ञा का ठीक पालन किया; अर्थात् सहस्रगीति-टीका माधवाचार्य को मिल गयी ।)... (४८)

आङ्गवर्पाल् पेत्त शिरियाळ्वानप्पिळ्ळै

ताम् कोडुत्तार् तम्मगनार् तम् कैयिल् * पाङ्गुडने नालूर् पिळ्ळैक्कवर्
ताम् नल्ल मगनार्क्कवर् ताम् * मेलोर्क्कीन्दारवरे मिक्कु ।।४९।।

तां माधव: पुनरुपाकुरुतात्मसूनो: सोऽप्यद्वितीयकरुणाख्यवराहसूरे:।
सोऽपि स्वकीयतनयस्य स चाप्युदार: पश्चात्तनाननुजिघृक्षुरतीव तेभ्य:।।४९।।

इस प्रकार, नम्पिळ्ळै स्वामीजी से वह ग्रंथ पाये हुए, ''शिरियाळ्वानप्पिळ्ळै'' नामक पूर्वोक्त माधवाचार्य स्वामीजीने, उसे अपने पुत्र श्रीपद्मनाभाचार्य स्वामीजी को दिया; उन्होंने तो कृपा से उसे नालूर पिळ्ळै नामक श्रीवराहाचार्य स्वामीजी को दिया; फिर उन्होंने उसे नाल्राच्चान्पिळ्ळै अथवा देवराजचार्य नामक अपने पुत्र को दिया। बाद में उक्त गुरुजी ने उसे विशेषतः बाद के आचार्यों को दिया।। (नम्बिळ्ळै स्वामीजी के पास 'ईडु' ग्रंथ पानेवाले पूर्वोक्त माधवाचार्य स्वामीजी ने (जिनका दूसरा नाम था शिरियाळ्वानप्पिळ्ळै) उसे अपने पुत्रको दे दिया; उन्होंने श्रीवराहस्वामीजी को दिया; उन्होंने अपने पुत्र (श्रीदेवराज स्वामीजी) को दिया और उन्होंने अपने शिष्यों को दिया। कहते हैं की अभी तक किसी आचार्य ने इस ग्रंथ का प्रवचन नहीं किया; परंतु केवल पुस्तक ही एक से दूसरे को दी गयी। क्रमेण श्री वरवरमुनि स्वामीजी ने ही इसका प्रचार करना शुरू किया। यह भाव है श्रीनम्बिळ्ळै स्वामीजी से ईडुग्रंथ पानेवाले माधवप्रभृति आचार्यों ने भी उनकी आज्ञा के विरुद्ध, उसका प्रचार करने का साहस नहीं किया। शायद वे स्वयं वह ग्रंथ वाचते होंगे और पूर्वोक्त अपने पुत्र अथवा शिष्य, एक व्यक्तिमात्र को दिये होंगे। श्री वराह स्वामीके पुत्र श्री देवराज स्वामीजी ने ही (श्रीवरदराज भगवान की विशेष आज्ञा होने के कारण) दो तीन व्यक्तियों को उपदेश दिया; इनमें से एक थे श्री वरवरमुनिस्वामीजी के आचार्य तिरुवाय्मोळि प्पिळ्ळै नामक श्रीशैलनाथ स्वामीजी। तथाच श्रीशैलनाथ स्वामीजी के समय ईडु ग्रंथ का थोडा-सा प्रचार होने लगा तो सही; परंतु पूर्ण प्रचार श्रीवरवरमुनि स्वामीजी के द्वारा ही हुआ।)...(४९)

विशिष्ट दिव्यनामों का प्रभाव कथन

नम्बेरुमाळ् नम्माळ्वार् नञ्जीयर् नम्बिळ्ळै
येन्बर् ※ अवरवर् तमेत्तत्ताल् ※ अन्बुडैयोर्
शात्तुतिरुनामंगळ् तानेन्नु नन्नेञ्जे
एत्तदनै च्चोल्लि नी यिन्नु ।।५०।।

आख्ये मन: कलय नम्बेरुमाळथो नम्माळ्वारिति व्यवहृते प्रणयेन भक्तै :।
नञ्जीयरित्यपि च नाम तथा प्रवृत्तं नम्बिळ्ळयित्यपि तथा विहितां च संज्ञाम्।।५०।।

नम् पेरुमाळ् (हमारे भगवान), नम् आळ्वार् (हमारे आळ्वार्), नम् जीयर् (हमारे यति) और नम् पिळ्ळै (हमारा बालक) ये सभी गौरव के नाम उस उस व्यक्ति की महिमा के निमित्त बने हैं। हे अच्छे मन ! यों मानकर कि, ''ये नाम उस व्यक्ति के प्रति प्रेम करनेवाले महात्माओं से रखे हुए हैं'', तुम उस वैभव का ध्यान पूर्वक प्रशंसा करो। (दिव्यप्रबंध टीकाओं तथा उनमें से श्रेष्ठ भगवद्विषय नामक ईडु व्याख्या के वृत्तांत बताने के बाद, अब ग्रंथकार को उन दिव्यप्रबंधो के सारतम अर्थों का विवरण करते हुए उनकी रक्षा करनेवाले श्रीवचनभूषण नामक दिव्यशास्त्र की महिमा का वर्णन करना आवश्यक प्रतीत हुआ। इस लिए इसके कर्ता श्रीलोकाचार्यस्वामीजी का वैभव बताना पडा । इस प्रसंग से ''लोकाचार्य'' बिरुद्विभूषित नम्बिळ्ळै स्वामीजी का स्मरण हुआ । नम्बिळ्ळै शब्द तो उनका जन्मसिद्ध नाम नहीं था; परंतु नम्-पिळ्ळै नामक दो शब्दों के मिलाप से बिरुद के रूप में उन्हें प्राप्त हुआ था । अत: इसका विवरण करने का विचार हुआ । नम् शब्द का अर्थ है- हमारा । यह नम्-शब्दवाला व्यवहार और भी दो तीन व्यक्तियों के बारे में किया जा रहा है। ये सभी व्यक्ति हमारे लिए पूज्य हैं अत: इन सभी

नामों का विवरण प्रकृत गाथा में किया जाता है। श्रीरंगनाथ भगवान (भोग मूर्ति) को एक समय अरैयर महात्मा ने ''नम्बेरुमाळ्'', (हमारे भगवान्) पुकारा। श्रीरंगनाथ भगवान ने श्रीशठकोप सूरी पर विशेष आदर करते हुए उन्हें नम् आळ्वार् कहा। श्रीभट्टर् स्वामीजी ने एक समय अपने शिष्य श्री वेदांतिमुनि पर बहुत प्रसन्न होकर उन्हे नम् जीयर् (हमारे यति) कहा । इन नञ्जीयर ने अपने शिष्य श्रीकलिवैरिदास स्वामीजी के ऊपर अत्यंत प्रसन्न होकर उन्हें नम्बिळ्ळै पुकारा । इस प्रकार ये चारों नाम अत्यंत प्रेम से दिये गये हैं। अतः इनकी प्रशंसा करना आवश्यक है।)...(५०)

नम्बिळ्ळै स्वामीजी को ''लोकाचार्य'' बिरुद प्राप्त होने का कारण बताना

तुन्नुपुगळ् कन्दाडै तोळप्पर् तम्मुगप्पाल् * एन्नवुलगारियनो वेन्नुरैक्क * पिन्नै उलगार्यनेन्नुम्पेर् नम्बिळ्ळैक्कोंगि * विलगामल् निन्नदेन्नुम् मेल् ।।५१।।

वाधूलवंशतिलकोऽसितवारणार्यः
प्रीत्या कदापि कलिसूदनदाससूरेः।
आख्यां जगद्गुरुरिति प्रथितामकार्षीत्तस्मात्तदा
प्रभृति सा नियता च तस्मिन् ।।५१।।

विशाल यशवाले, कन्दाडै (माने वाधूल) वंशवाले तोळप्पर् नामक महात्मा ने विशेष प्रसन्नता के मारे पूछा कि ''क्या आप सारे जगत के आचार्य हैं'' तबसे श्री नम्बिळ्ळै स्वामीजी को यह लोकाचार्य शुभनाम विच्छेद के बिना चलकर आया। (विवरण- जब नम्पिळ्ळै स्वामीजी सहस्रगीति इत्यादि सांप्रदायिक ग्रंथों का प्रवचन करते श्रीरंगधाम में विराजमान थे, तब वहां की सारी आस्तिक जनता उनकी

भक्त बन गयी थी। फलतः उधर विराजमान दूसरे विद्वानों की कुछ चलती नहीं थी। उनमें से एक विद्वान और वाधूलवंशके गादिपति तोळप्पर् नामके थे, जो इसी कारण नम्पिळ्ळै स्वामीजी से नाराज थे। एक दिन उन्होंने नम्पिळ्ळै स्वामीजी से अकस्मात् मिल कर उनकी क्रूर निंदा कर अपनी असूया प्रकाशित की । परंतु घर जाने के बाद उनको ऐसा लगा कि, ''आचार्यसार्वभौम नम्पिळ्ळै की निंदा करके मैंने बहुत गलती की । अतः उनसे क्षमा माँगनी चाहिए ।'' इधर नम्बिळ्ळै स्वामीजी ने सोचा, ''यह तो अवश्य ही मेरे किसी अज्ञात अपराध के निमित्त है कि श्रेष्ठ कुल में अवतीर्ण महात्मा तोळप्पर् मुझपर नाराज हुए। अतः मुझे उनसे क्षमा माँगनी चाहिए।'' यह सोचकर वे तोळप्पर के मकान पधारे और किवाड बंद देखकर, खटखटाने में संकोच पाकर, बाहर ओसारे के एक कोने में बैठ गये । थोडी देर के बाद तोळप्पर् स्वामीजी नम्बिळ्ळै स्वामीजी के यहां जाने के लिए प्रस्थित होकर, किवाड खोल कर, घर से बाहर आये। उनको देखते ही नम्बिळ्ळै स्वामीजी ने साष्टांग प्रणाम किया और सविनय प्रार्थना की कि, ''इस पामर के सभी अपराधों को क्षमा कर, इस पर अनुग्रह कीजिए ।'' यह सुनकर तोळप्पर् आश्चर्यमग्न हो गये । उन्होंने सोचा, ''ओह ! इनका कैसा विलक्षण विनय है ! अपराध (माने असूया व निंदा) करनेवाला मैं था; क्षमा मांगनेवाले तो ये हैं।'' फिर उन्होंने कहा, ''हे महात्मन् ! अभी तक मैं आपको कतिपय जनों के गुरु मानता था । अब आपका विशेष गुण देखने पर मुझे लगता है कि आप जगत के ही गुरू हैं।'' यों कहते हुए वे उनके प्रधान भक्त बन गये । इस कारण से नम्बिळ्ळै स्वामीजी का यह बिरुद हुआ, 'लोकाचार्य' अथवा जगद्गुरू ।)... (५१)

आचार्य भक्ति से प्रेरित होकर लोकाचार्य नाम रखना

पिन्नै वडक्कु त्तिरुवीधिप्पिळ्ळै ✻ अन्बाल् अन्न तिरुनामत्तैयादरित्तु ✻ मन्नुपुहळ्
मैन्दर्क्कु च्चात्तुगैयालु वन्दु पिरन्ददु ✻ एंगुम् इन्दत्तिरुनाममिंगु ।।५२।।

तां कृष्णपाद उपलालयति स्म संज्ञां कृत्वा तदर्हचरितस्य निजस्य सूनोः।
तेनैव सा जनहिताय भुवि प्रवृत्ता संज्ञा जगद्गुरुरिति प्रथिता समन्तात् ।।५२।।

बाद में एक समय वडक्कुत्तिरुवीधिप्पिळ्ळै स्वामीजी ने आचार्यभक्ति से प्रेरित होकर, उस लोकाचार्य नाम का बहुत आदर करते हुए, कीर्तिमान अपने पुत्र को वह नाम रखा । इस कारण से वह शुभनाम संसार में सर्वत्र व्याप्त हुआ। (माने प्रसिद्ध हुआ) । (विवरण - वडक्कुत्तिरुवीधिप्पिळ्ळै स्वामीजी बडे गुरुभक्त थे। उन्हें अपने गुरुजी की कृपासे जब पुत्र हुआ, तब उन्होंने उस शिशुको गुरु का नाम रखने की इच्छा से 'लोकाचार्य' नाम रख दिया । तब से इनके नाम के रूप में यह लोकाचार्य शब्द सर्वत्र प्रसिद्ध हुआ ।)...(५२)

श्रीवचनभूषण दिव्यशास्त्र का वैभव बताना

अन्नपुगळ् मुडुम्बै अण्णलुलकाशिरियन् ✻
इन्नरुळाल् शेय्द कलै यावैयिलुम् ✻ उन्निल्
तिगळ् वचनभूषणत्तिन् शीर्मैयोन्नुक्किल्लै
पुगळल्लु विव्वार्त्तै मेय्यिप्पोदु ।।५३।।

को वा प्रबंध इह लोकगुरोः प्रबन्धैः सादृश्यमेति सकलेष्वपि वाङ्मयेषु ।
तत्रापि किं वचनभूषणतुल्यमन्यत्? सत्यं ब्रवीमि तदिदं वचनं न मिथ्या ।।५३।।

वेदवेदांग इतिहास पुराणदिव्यप्रबंध इत्यादि समस्त सद्ग्रंथों का सारभूत ग्रंथ ''श्रीवचनभूषण'' है।

पूर्वोक्त वैभववाले 'मुडुम्बै' कुल-तिलक, श्रीलोकाचार्यस्वामीजी द्वारा परमकृपापूर्वक अनुगृहीत समस्तरहस्यग्रंथों के बीच में अत्युज्ज्वल श्रीवचनभूषण ग्रंथ का वैभव दूसरे किसी ग्रंथ को नहीं । यह वचन मिथ्या प्रशंसा नहीं; किंतु सर्वथा सत्य है। (विवरण - श्रीलोकाचार्य स्वामीजी 'अष्टादश रहस्य' नाम से प्रसिद्ध अठारह दिव्य रहस्य ग्रंथों के लेखक हैं। इनमें से एक ग्रंथ है श्रीवचनभूषण । ज्ञानी महात्मा लोग कहते हैं कि यह ग्रंथ, ''सांगाखिलद्रविडसंस्कृतरूपवेदसारार्थसंग्रहमहा-रसवाक्यजातम्'' अर्थात् वेदवेदांग इतिहास पुराणदिव्यप्रबंध इत्यादि समस्त सद्ग्रंथो का सारभूत है । अतः इसका वैभव इस संसारभर में दूसरे किसी ग्रंथ में पाया नहीं जा सकता । इस बातमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है।) .... (५३)

श्रीवचनभूषण शुभनाम का अर्थ बताना

**मुन्नम् गुरवोर् मोऴिन्दवचनंगळ् तन्नै * मिगक्कोण्डु कत्तोर् तम्मुयिर्क्कु *
मिन्नणिया च्चेर च्चमैत्तवरे शीर्वचनभूषणमेन् पेर् * इक्कलैक्किट्टार् पिन् ।।५४।।**

**प्राचां प्रपत्तिपदवीमयतां गुरूणां रोचिष्णुना वचनरत्नकदम्बकेन ।
एतां कृतिं ग्रथयतैव बुधात्मभूषां दत्तं वरं वचनभूषणनामधेयम् ।।(५४)**

''श्रीवचनभूषण'' शास्त्र का वैभव इस संसारभर में दूसरे किसी ग्रंथ में पाया नहीं जा सकता।

पूर्वाचार्यानुगृहीत श्रीसूक्तियों को चुन कर (अधिकतया उन्हींको गुथकर) विशेष ज्ञानियों के धारण करने योग्य सुंदर आभूषण के रूप में श्रीस्वामीजी ने यह ग्रंथ लिखकर इसका ''श्रीवचनभूषण'' नाम रखा । (श्रीवचन और भूषण नामक दो शब्द मिलाकर श्रीवचनभूषण शब्द बना

है। श्रीवचन शब्द का अर्थ है पूर्वाचार्यों की श्रीसूक्तियाँ; और भूषण शब्द का अर्थ है ज्ञानी महात्माओं के (कंठ में) धारण करने योग्य आभूषण। प्रकृत ग्रंथ प्राय: पूर्वाचार्यों की चुनी हुई श्रीसूक्तियों को लेकर रचाया गया है और तत्वज्ञानियों के धारण करने योग्य है। अत: इसका नाम हुआ श्रीवचनभूषण।) ...(५४)

श्रीवचनभूषण के अधिकारी की दुर्लभता बताना

आर् वचनभूषणत्तिनाळ् पोरुळेल्लामरिवार् * आरदु शोन्नेरिलनुष्ठिप्पार् ओरोरुव रुण्डागिल् अत्तनै काणुळ्ळमे * एल्लार्कुमण्डाददन्नो अदु ।।५५।।

जानन्ति के वचनभूषणवारिराशे र्धार्यं सदा हृदि सतामभिधेयरत्नम्।
के तत्प्रदर्शितपथेन च संचरन्ति य: कोऽपि संभवति चेद्विरलो हि तादृक् ।।५५।।

"श्रीवचनभूषण" शास्त्र को समझने पर भी तदनुसार चलना बड़ा कठिन है।

कौन श्रीवचनभूषण दिव्य शास्त्र के समस्त गंभीर अर्थ ठीक समझ सकेगा? और उस शास्त्र के वचनानुसार कौन आचरण कर सकेगा? हे मन! सुदृढ जान लो कि कदाचित् ही कोई ऐसा मानव मिल सकेगा। वह दिव्यशास्त्र सबकी समझ व अनुष्ठान में आनेवाला नहीं। (विवरण- यह श्रीवचनभूषण नामक दिव्यशास्त्र ऐसा एक महान मीमांसाशास्त्र है कि साधारण लोग इसके गंभीर अर्थ समझ ही न सकेंगे। अथवा समर्थ गुरु के उपदेश व अच्छी टीका के अध्ययन से कदाचित् कोई उसे समझ भी सकता होगा। तथापि तदनुसार चलना बडा कठीन है; अत: ऐसा महात्मा मिलना असंभवसा है। अर्थात् कदाचित् ही कोई ऐसा भाग्यवान

महात्मा मिलता होगा । गृहस्थ होते हुवे ही सर्वात्मना वैराग्य का अवलंबन करना, अपने विषय में अपराध करनेवालों के प्रति कृपा, प्रीति, अनुताप, कृतज्ञतानुसंधान इत्यादि करना, ये सभी ऐसे कठिन काम हैं जो बडे बडे साधकों को भी करने में अशक्य है । अत: ''मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये'' इत्यादि भगवद्गीतोक्त प्रकार इस शास्त्र का अधिकारी मिलना कठीन है। ...(५५)

श्रीवचनभूषण समझने और तदनुगुण चलने कि इच्छा करना ही आत्मोज्जीवन का उपाय है

उय्य निनैवुडैयीर् उंगळुक्कु च्चोल्लुहिन्नेन् *
वैयगुरु मुन्नम् वाय् मोळिन्द * शेय्यकलै
याम् वचनभूषणत्तिनाळ् पोरुळै * कत्तदनु
क्काम् निलैयिल् निल्लुमरिन्दु ।।५६।।

उग्राद्भवाब्धिकुहरात् द्रुतमुत्तितीर्षा जायेत वो यदि जनास्तदुपाय एष:।
आलोच्यतां वचनभूषणमात्मनीदं निष्ठीयतां च नियमेन तदुक्तमार्गे ।।५६।।

आत्मकल्याण पाने का एक ही उपाय है की,
''श्रीवचनभूषण'' का अभ्यास और तदनुकूल आचरण।

हे उज्ज्ञीवन पाना चाहनेवाले जनो ! मैं तुम्हारा हित बतावूंगा, सुनो। पूर्वकाल में श्री लोकाचार्य स्वामीजी द्वारा अनुगृहीत, श्रीवचनभूषण दिव्य शास्त्र के गंभीर अर्थों को गुरुमुख से सुनकर एवं ठीक समझ कर उस ज्ञान का सदृश अनुष्ठान करने में निरत हो जाओ। (विवरण - आत्मकल्याण पानेका यह एक ही उपाय है कि श्रीवचन भूषण दिव्यशास्त्र का अभ्यास व तदनुगुण आचरण करना ।)... (५६)

श्रीवचनभूषण का अनादर करनेवालों के प्रति घृणा प्रकट करना

देशिकर्पाल् केट्ट शेळुम्पोरुळै ✻
शिन्दैतन्निल् माशरवे यून्न मननम् शेयदु ✻
आचरिक्क वल्लार्गळ् ताम् वचनभूषणत्तिन्
वान् पोरुळै ✻ कल्लाददेन्नो कवर्न्दु ।।५७।।

ये देशिकादधिगतान्युपदेशवर्त्मान्यासज्य चेतसि तथाऽऽचरितुं च शक्ताः।
ते यत्नतो वचनभूषणगूढमर्थं नैवाचरन्ति परिशील्य कुतो न विद्मः।।५७।।

> अनेक लोग ''श्रीवचनभूषण'' को छोड़ दूसरे नाना शास्त्रों का अध्ययन करते हुये व्यर्थ ही अपना समय काटते है।

आचार्यों के उपदेश किये हुए श्रेष्ठ अर्थों का अपने मन में सुदृढ चिंतन कर, तदनुगुण आचरण करने में समर्थ श्रेष्ठ अधिकारी, क्योंकर श्री वचनभूषण के श्रेष्ठ अर्थों का साभिनिवेश शिक्षण नहीं पा रहे हैं? (विवरण - इस संसार में ऐसे कोई कोई ज्ञानी महात्मा लोग रहते हैं, जो कि गुरु की सेवा करके, उनसे उपदेश पाकर, तदनुसार चलने का भी प्रयत्न करते हैं; परंतु दुःख की बात है कि ऐसे कोई कोई लोग श्रीवचनभूषण दिव्य शास्त्र छोड दूसरे नाना शास्त्रों का अध्ययन करते हुए व्यर्थ ही अपना समय काटते हैं। यदि ये लोग यह व्यर्थ प्रयत्न छोड श्रीवचनभूषण का ही अध्ययन कर देते, तो कितना अच्छा होता?)...(५७)

श्रीवचनभूषण के व्याख्यानों की प्रशंसा करना

सत्संप्रदायम् तामुडैयोर् केट्टक्काल् ✻ मेच्चुम् व्याख्यैगळुण्डागिल् ✻ नच्चि
अधिकरियुम् नीर् वचनभूषणत्तु क्कत्त मतियुडैयीर् ✻ मध्यस्तराय् ।।५८।।

सत्संप्रदायसुधिया सततोपलाल्या लभ्येत चेद्वचनभूषणवाक्यटीका ।
सा व्यञ्जती सकलमस्य पदार्थजातं मध्यस्थयैव दशया ननु भावनीया।।५८।।

हे श्रीवचनभूषण दिव्यशास्त्र के परमभक्तो ! सत्संप्रदाय के निष्णात महात्मा लोग, सुनने मात्र से जिसकी प्रशंसा करेंगे ऐसे व्याख्यान कितने भी क्यों न हो, यदि मिलें तो तुम मध्यस्थ दृष्टिवाले होकर प्रेम से उनका अभ्यास करो । (विवरण - यह तो संभव है कि श्रीवचनभूषण जैसे महान ग्रंथ के अनेक व्याख्यान लिखे जाये । वस्तुतः कहना पडता है कि यह ग्रंथ अनेक व्याख्यान पाने योग्य है । अतः आस्तिक जनता को ऐसे सत्संप्रदाय-निष्ठों के आदरणीय सभी व्याख्यानों का स्वागत करना चाहिए ।)...(५८)

श्रीवचनभूषण की असीम भोग्यता का वर्णन करना

शीर्वचनभूषणत्तिन् शेम्पोरुळै * चिन्तै तन्नाल्
तेरिलुमाम् वाय्कोण्डु शेप्पिलुमाम् *
आरियर्गाळ् एन्तनक्कु नाळुमिनिदाग
निन्नदैयो * उन्तमुक्केव्विन्बमुळदाम् ।।५९।।

सार्थाः स्मरामि यदि वाक्यविभूषणीया वाचो वदामि यदि वा, मधुरा ममापि ।
आर्याः ! कथं नु भवतां मनसि प्रथेरन् भूम्ना धियो हि विषयातिशयावगाहाः।।५९।।

आचार्य संबंध पाये बिना कोई भी भगवत्संबंध को प्राप्त नहीं कर सकेगा।

हे आर्यजनो ! जब मैं अपने मनमें श्रीवचनभूषण के श्रेष्ठ अर्थों का ध्यान अथवा वाणी से वर्णन करूंगा, तब, अहो ! मुझे कैसा अनिर्वचनीय आनंद मिलता है ! न जाने आप लोगों को कैसा आनंद मिलता होगा । (विवरण - श्री स्वामीजी नैच्यानुसंधान करते हुए कहते हैं कि ''श्रीवचनभूषण'' के सुंदर अर्थों का चिंतन अथवा कथन, जब

मुझ अरसिक को ही इतना आनंद दे रहा है, तब भक्तिपूर्ण व रसिकाग्रणी तुम्हारे जैसे महात्माओं को वह कितना आनंद देता होगा।)...(५९)

गुरुकृपा के बिना मोक्ष प्राप्ति को अशक्य बताना

तन्गुरुविन् ताळिणैगळ् तन्निल् अन्बोन्निल्लादार्
**अन्बु तन्पाल् शेय्दालुमम्बुजैकोन् *
इन्बमिगु विण्णाडु तानळिक्कवेण्डियिरान् *
आदलाल् नण्णारवर्गळ् तिरुनाडु ।।६०।।**

भक्तिं विहाय पदयोर्निजदेशिकस्य भक्तिप्रकर्षमपि ये भगवत्ययन्ते ।
तेभ्यो रमासहचर: परमं पदं तद्दातुं नहीच्छति न तेऽपि च तल्लभन्ते ।।६० ।।

भगवान भी आचार्य के आश्रय में रहनेंवाले को ही प्रसन्न करते हैं।

आचार्यनिष्ठों पर ही प्रेम करनेवाले श्रीलक्ष्मीनाथ भगवान, स्वकीय गुरु के पादारविंदों में भक्तिशून्य मानवों के अपने (भगवान के) विषय में अत्यधिक भक्ति करने पर भी, उन्हें परमपद देना नहीं चाहते; अत: आचार्यभक्तिशून्य मानव श्री वैकुंठ धाम नहीं पा सकेंगे । (विवरण - पिछली सात गाथाओं में श्रीवचनभूषण की प्रशंसा और विशेषत: पूर्व गाथा में उस दिव्य शास्त्र के अर्थों का ध्यान करने पर श्रीस्वामीजी को, उनमें से प्रधान कतिपय अर्थो का वर्णन करने की इच्छा हुई । अत: अब आप यही काम करने लगते है। अर्थात् अबसे शुरूकर ग्यारह गाथाओं से, अर्थात् लग भग ग्रंथसमाप्ति तक, श्रीवचनभूषण के सारार्थों का वर्णन करते हैं। यद्यपि उस शास्त्र में लक्ष्मीजी का वैभव, भगवान का प्रभाव इत्यादि अनेक अर्थ उपवर्णित हैं । तथापि इन सब के बाद, अंतमें उपवर्णित आचार्य वैभव में ही उस ग्रंथ का परमतात्पर्य है। अत: हालमें

आचार्य भक्ति शून्य मानव श्रीवैकुण्ठ धाम नहीं पा सकेंगे।

इसी अर्थ का वर्णन किया जाता है। प्रकृत गाथा का यह तात्पर्य है की भगवान आचार्य के द्वारा अपनी (भगवान की) भक्ति करनेवालों पर ही कृपा करेंगे, नतु आचार्य से विमुख होकर केवल अपनी भक्ति करनेवालों पर । श्री वचनभूषण में यह अर्थ इस प्रकार उपवर्णित है पानी में रहते हुए कमल को खिलानेवाला सूर्य ही, पानी से बाहर आ जाने पर उसे सुखा देता है। ठीक इसी प्रकार भगवान भी आचार्य के आश्रय में रहनेवाले को ही प्रसन्न करते हैं और वह संबंध छोड देने पर उसे सुखा देते हैं; आचार्यसंबंध पाये विना कोई भी भगवत्संबंध को प्राप्त नहीं कर सकेगा, इत्यादि । ...(६०)

आचार्यसंबंध से ही मोक्षप्राप्ति को सरल बताना

ज्ञानमनुष्ठानमिवै नन्नागवे युडैय नान * गुरुवै यडैन्दक्कालू * मानिलत्तीर् तेनार्कमल त्तिरुमामहळ् कोळुनन् * ताने वैकुंठम् तरुम् ।।६१।।

ज्ञानं परं तदुचिताचरणं च यस्य
तस्मिन् गुरौ परमभक्तिजुषे जनाय ।
भौमा: ! स्वयं मधुरसाविलपद्मजाया:
कान्तश्श्रिय : करुणया निजधाम दत्ते ।।६१।।

आचार्य भक्ति विभूषित के लिए लक्ष्मी पुरुषकार की भी आवश्यकता नहीं रहतीं है।

हे भूतलवासियों ! यदि कोई भी मानव ज्ञान व तदनुगुण सदाचार से विभूषित आचार्य का आश्रयण करें, तो मधुपूर्ण कमल में निवास करनेवाली लक्ष्मीजी के प्राणवल्लभ भगवान स्वयं उसपर कृपा दिखाते

हुए उसे श्रीवैकुंठ को प्रदान करते हैं। (विवरण - पिछली गाथा में यह अर्थ बताया गया कि आचार्य भक्ति के विना केवल भगवद्भक्ति करनेवाले को मोक्ष न मिलेगा; अब यह कहा जा रहा है कि आचार्यभक्ति करनेवाले को भगवद्भक्ति के विना भी भगवान से मोक्ष दिया जायगा। परंतु एक बात की आवश्यकता है कि ऐसे आचार्य को ज्ञान व अनुष्ठान से संपन्न होना चाहिए। अत एव शास्त्र पुकारता है कि, ''उभाभ्यामेव पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः। तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते परमेश्वरः।।'' अर्थात्, जैसे पक्षी दो पंखों की सहायता से आकाश में उडते हैं, इसी प्रकार मानव भी ज्ञान व कर्मों से सद्गति पा सकता है। अतः निष्कल्मष तत्वज्ञान और तदनुरूप सदाचार से युक्त महात्मा लोग ही स्वयं भगवान को प्राप्त करेंगे और अपने चरणाश्रितों को भी वहां पहुंचावेंगे। भगवान को लक्ष्मीनाथ कहने का यह तात्पर्य है - यद्यपि लक्ष्मीजी के पुरुषकार करने पर भगवान कृपा करते हैं; तथापि आचार्यभक्ति से विरहित मानव के बारें में यह लक्ष्मी पुरुषकार भी बेकार होगा; और आचार्यभक्तिविभूषित के लिए लक्ष्मी पुरुषकार की भी आवश्यकता नहीं रहती।)...(६१)

आचार्य भक्ति करनेवाले को भगवद् भक्ति के बिना भी भगवान से मोक्ष दिया जायेगा।

गुरुभक्ति करने का उपदेश देना

उय्यनिनैवुण्डाहिल् उम् गुरुक्कळ् तम्पदत्ते
वैयुम् * अन्बु तन्नै इन्द मानिलत्तीर् *
मेय्युरैक्केन् पैयरविल् मायन् परमपदमुंगळु
क्काम् * कैयिलंगु नेल्लिक्कनि ।।६२।।

उज्जीवनाय यदि मानसमुत्सुकं वो निष्ठीयतां निजगुरोश्चरणारविन्दे ।
सत्यं ब्रवीमि मनुजा: ! फणिशायिनस्तद्दिव्यं पदं करतलामलकं भवेद्व:।।६२।।

हे इस धरातल के निवासियों । यदि आपको आत्मोद्धार पाने की इच्छा हो, तो अपने आचार्यों के श्रीपादों में भक्ति कीजिए; मैं उसका सच्चा फल बतावूंगा, सुनिए । ऐसा करने पर शेषशायी सर्वेश्वर का परमपद आपको करतलामलक बनेगा । (विवरण - गुरुपादारविंद में भक्ति करनेवालों को मोक्ष करतलामलकवत् हस्तगत होगा; अथवा परमपद के सभी भोग उन्हें इसी लोक में मिल जायेंगे । अत: यह श्रेष्ठ पुरुषार्थ पाने का श्रेष्ठ उपाय, आचार्यभक्ति है।)... (६२)

आचार्य भक्ति करनेवाले को परमपद के सभी भोग उन्हें इसी लोक में मिल जायेंगे।

आचार्यकृत उपकारों की महत्ता बताना

आचार्यन् शेय्द उपकारमानवदु * तूय्दाह नेञ्जुतन्निल् तोन्नुमेल् * देशा न्तरत्तिलिरुक्क मनम् तान् पोरुन्दमाट्टादु * इरुत्तलिनियेदरियोम् याम् ।।६३।।

उज्जीवनाय विहिता गुरुणोपकाराश्चित्ते
लगन्ति विमला यदि चेतनानाम्।
देशान्तरे निवसनं न मनोऽपि मृष्येत्
वास: कथं नु भवितेति वयं न विद्म :।।६३।।

यदि आचार्य के किये हुए उपकार ठीक हमारी समझ में आ जायें, तो उन आचार्य को छोडकर दूर के देशांतर में रहना हमारे मन का भी अनिष्ट होगा; फिर आचार्य से दूर रहने का कारण हम नहीं जान सकते। (विवरण - श्रीवचनभूषण का यह एक सुंदर उपदेश है कि आचार्यभक्त, उत्तम मानव के रहने का स्थान अपने आचार्य की श्रीसन्निधि है। यह

आचार्य का उपकार जाननेवाला शिष्य एक पल भर के लिये भी आचार्य का विरह सहन नहीं कर सकते है।

अर्थ इस गाथा में बताया जाता है। लोहे को सोना बनानेवाले सिद्ध की भांति सर्वथा असत्कल्प पडे हुए चेतन को योग्य उपदेश आदि देकर इससे अच्छा भक्त बनानेवाले आचार्य का महोपकार, सत्य ही वाचामगोचर है। अत: ठीक ठीक यह उपकार जाननेवाला सच्छिष्य, एक पल भर के लिए भी उन गुरुजी के विरह को सहन नहीं कर सकेगा । फिर यह कैसे बनेगा कि यह शिष्य गुरुसान्निध्य छोडकर विदेश में वास करें? परंतु इस विचित्र संसार में यह भी आश्चर्य देख पाया जाता है कि कोई कोई शिष्य अपने आचार्य से दूर रहते हैं। अब स्वामीजी कहते हैं कि हम यह नहीं समझ सकते कि ये लोग क्योंकर और कैसे अपने आचार्य से दूर रहते हैं। (और क्या? उनका पाप ही उन्हें यों आचार्य से दूर रखता है।)...(६३)

आचार्य निष्ठ शिष्य के लिए श्रेष्ठ निवास स्थान आचार्य की श्रीसन्निधि है।

आचार्य सन्निधिनिवास को अवश्यकर्तव्य बताना

तन्नारियनुक्कु त्तानडिमै शेय्वदु * अवन् इन्नाडुतन्निलिरुक्कुम् नाळ् * अन्ने
ररिन्दुमदिलाशैयिन्नि आचार्यनै प्पिरिन्दिरुप्पारार् * मनमे पेशु ।।६४।।

अत्रैव केवलमनन्यपरा लभेरन् शुश्रूषणां निजगुरोरुपसेदिवांस:।
एनां प्रमेयसरणिं प्रतिपद्यमाना: के वा त्यजन्ति निजदेशिकपादमूलम् ।।६४।।

शिष्य, अपने आचार्य की, उनके इस लोक में विराजने तक ही सेवा कर सकता है। यह तत्व जानते हुए भी कौन उस सेवा में आशाहीन होकर आचार्य से वियुक्त रह सकेगा? हे मन! तुम ही

बताओ। (विवरण - कोई समझता होगा की, जब तक आचार्य से विद्यार्जन कर रहे हैं, तब तक उनकी सेवा करनी चाहिए; विद्या के समाप्त होने के बाद तो आचार्य को छोडकर हम चाहें जिस देश में रह

आचार्य सेवा अमूल्य है, उनके परमपद पधारने के बाद माँगने पर भी यह सेवा नहीं मिलेगी।

सकते हैं। परंतु यह अभिप्राय गलत है। क्योंकि आचार्यसेवा ऐसी एक कीमतवाली चीज है जो बारबार नहीं मिलेगी । अत: जबतक वह मिलती रहेगी, तब तक उसे अपनाते ही रहना । अर्थात् जब तक आचार्य इस धरातल पर विराजमान हो, तब तक उनकी सेवा अवश्य करणीय है; क्योंकि उनके परमपद पधारने के बाद, माँगने पर भी यह सेवा न मिलेगी । अब स्वामीजी यह प्रश्न करते हैं कि यह तत्व जानने पर भी क्या कोई भी मानव आचार्यसेवा छोडकर उनसे दूर रह सकता है।) ...(६४)

आचार्यशिष्यों के परस्पर रक्षा करने के प्रकार का वर्णन करना

आचार्यन् शिष्यन् आरुयिरै प्पेणुमवन् *
तेशारुम् शिष्यनवन् शीर्वडिवै * आशैयुडन्
नोक्कु मवनेन्नुम् नुण्णरिवै क्केट्टुवैतुम् *
आर्कुमन्नेर् निर्कैयरिदाम् ।।६५।।

अन्तेसतो गुरुरनारतमात्मरक्षां शिष्य: प्रहृष्य कुरुतां गुरुदेहरक्षाम् ।
अर्थं सुसूक्ष्ममिममाकलयन्ति चित्ते स्याद्दुर्लभा तदपि वर्त्मनि तत्र निष्ठा।।६५।।

आचार्य को अपने शिष्य की आत्मा पर निगाह रखनी चाहिए; स्वरूपज्ञानरूप तेज से युक्त शिष्य को तो भक्ति के साथ उन आचार्य के

दिव्यमंगलविग्रह पर ही निगाह रखनी चाहिए। इस रहस्य को ठीक जान लेने पर भी उस मार्ग में चलना किसीको भी सरल नहीं। (विवरण -

शिष्य को आत्मोध्दार की चिंता नहीं करनी चाहिये,
आचार्य को शरीरपोषण की चिंता नहीं करनी चाहिये।

श्रीवचनभूषण बताता है कि आचार्य को अपने शरीरपोषण की चिंता नहीं करनी चाहिए , जिसे अपने शिष्य पर छोड देना चाहिए । और शिष्य को अपने आत्मोद्धार की चिंता नहीं करनी चाहिए, जिसे अपने गुरु के ऊपर छोड देना चाहिए; यह सूक्ष्म शास्त्रार्थ को समझना ही कठीन है; और कदाचित् समझ लेने पर भी तदुचित आचरण करना सर्वथा अशक्य-सा है ।)... (६५)

उक्त अर्थ में निष्ठा रखने वाले महात्मा पिन्बळगराम् पेरुमाळ् जीयर की प्रशंसा करना

पिन्बळगराम् पेरुमाळ् जीयर् ✻
पेरुन्दिवत्तिलू अन्बदुवुमत्तु मिक्कवा
शैयिनाल् ✻ नम्बिळ्ळै क्कान वडिमैगळ् शेय्यन्निलैयै
नन्नेज्जे ✻ ऊनमरवेप्पोळुदुमोर् ।।६६।।

अत्यादरान्निजगुरुं कलिवैरिदासं नित्यां विभूतिमवमत्य निरन्तरं यः।
शुश्रूषते स्म कुरु मानस ! तस्य निष्ठां पश्चान्मनोहरपतेर्यतिपुंगवस्य।।६६।।

पिन्बळगिय पेरुमाळ् जीयर (पश्चात्सुंदरयति) नामक महात्मा श्रेष्ठ परमपद की भी परवा नहीं करते हुए अत्यंत भक्ति के साथ नम्बिळ्ळै (श्रीकलिवैरिदास) स्वामीजी की अपेक्षित सेवा करते थे । हे अच्छे मन ! तुम नित्य उनकी महिमा का ही पूर्ण चिंतन किया करो ।

(विवरण - नम्बिळ्ळै स्वामीजी के शिष्यों में पिन्बळगिय पेरुमाळ् जीयर् (पिन्बळगिय पेरुमाळ् - श्रीरंगनाथ भगवान्, जीयर् - यति)

आचार्यसेवा करनेवाले महात्माओं का स्मरण-चिंतन करने से भी कल्याण हो जायेगा।

नामक एक महात्मा विराजमान थे, जो पूर्वगाथोक्त शिष्यलक्षण से परिपूर्ण थे । अर्थात् ये महात्मा आचार्य कैंकर्य में इतनी आसक्ति रखते थे, जो कुछ कहने की बात नहीं । इनकी इच्छा थी कि मैं परमपद गये बिना इस संसार में ही चिरंजीवी होकर रहता हुआ गरुजी की सेवा करूं। इस लिए वे कुछ औषध का सेवन कर अपने शरीर को बलवान बनाने का प्रयत्न करते थे । यद्यपि हम ऐसे आचार्यसेवा नहीं कर सकेंगे; तथापि इन महात्मा की निष्ठा का चिंतन करने से भी हमारा कल्याण होगा ।।)...(६६)

पूर्वाचार्यों के आचरण का अनुकरण करने का उपदेश देना

आचार्यहळ् अनैवरुम् मुन्नाचरित्त * आचारन्तन्नै यरियादार् * पेशुहिन्न वार्तैहळै क्केट्टु मरुळादे * पूर्वहळ् शीर्त्तनिलै तन्नै नेञ्जे शेर् ।।६७।।

सर्वेऽपि पूर्वगुरवस्समयेन येन चेरुस्तमाकलयतामयथावदेव ।
वाचो निशम्य वरमानस ! मा भ्रमीस्त्वं वर्तस्व पूर्वतरदेशिकवर्तनेन।।६७।।

हमारे सभी पूर्वाचार्यों के अनुष्ठित सदाचारों के अज्ञाता लोग, अपनी इच्छा के अनुगुण (आचार के विषय में) जो कहते होंगे, उन बातों से भ्रांत न हो कर, हे मन ! तुम पूर्वाचार्यों के श्रेष्ठ आचरण को अपनाओ। (विवरण- कितने ही लोग पूर्वाचार्यों के अनुष्ठान प्रकार नहीं

जानते हुए केवल अपनी कल्पना के अनुसार जो नाना प्रकार के आचारों व अनुष्ठानों की बातें करते हैं, वह सुनना और उसके अनुगुण चलने की चेष्टा करना आपत्कारक है। अत: ऐसे विषयों में पूर्वाचार्यों के आचरण पर पूरा ध्यान देकर उनके मार्ग में चलना ही आत्मकल्याण पाने का सच्चा मार्ग है।)...(६७)

नास्तिक और आस्तिक नास्तिकों को छोड, आस्तिकों का ही संग करने का उपदेश देना

नास्तिकरुम् नर्क्लैयिन् नन्नेरिशेरास्तिकरुम् *
आस्तिकनास्तिकरुमामिवरै * ओर्त्तु नेञ्जे !
मुन्नवरुम् पिन्नवरुम् मूर्खरेन विट्टु *
नडुच्चोन्नवरै नाळुम् तोडर् ।।६८।।

ये नास्तिका हृदय ! तान् विजहीहि
मूर्खांस्तानप्यपाकुरु य आस्तिकनास्तिकाश्च ।
ये त्वास्तिका नयपथान्न परिच्यवन्ते
तानन्वहं परिचिनुष्व तमोपहन्तॄन् ।।६८।।

नास्तिक और आस्तिक-नास्तिक का संग छोड़कर सदा आस्तिक का ही संग व सेवा करने में निरत रहना चाहिये।

हे मन ! तुम नास्तिक, श्रेष्ठ शास्त्रों में उपदिष्ट सन्मार्ग के अनुगामी आस्तिक और आस्तिकनास्तिक नामक इन तीनों का ठीक विवेचन कर, इनमें से पहले और तीसरे को सुधार पाने के अशक्य मूर्ख जानकर, उनका संग छोड दो, और आस्तिकों का ही सदा अनुवर्तन करो। (विवरण - श्रीवचनभूषण में उपदिष्ट अर्थ यह भी एक होता है - इस धरातल पर, नास्तिक, आस्तिक और आस्तिक-नास्तिक नामक

तीन प्रकार के लोग रहते हैं। वेदादि शास्त्र, और उनमें उपदिष्ट जीवात्मा, परमात्मा, स्वर्ग, नरक, मोक्ष, तत्साधन इत्यादि अर्थ न माननेवाला नास्तिक, और इन सबको ठीक मान कर शास्त्रोक्त सन्मार्ग में चलने वाला आस्तिक कहलाता है। शास्त्र व तदुपदिष्ट समस्त अर्थ मानता हुआ भी जो मानव शास्त्रोक्त सन्मार्ग में न चलेगा, किंतु नास्तिक की भांति विपरीताचरण ही करेगा, उसका नाम है आस्तिक-नास्तिक। इनमें से आस्तिक ही हमें सहवास और सेवा करने योग्य है। दूसरे दोनों का संग आपत्कारक सिद्ध होगा। किन्हींका मंतव्य होगा कि नास्तिक तो खराब है ही; परंतु आस्तिक-नास्तिक इतना खराब नहीं होगा। परंतु श्रीवचनभूषण बताता है कि केवल नास्तिक की अपेक्षा आस्तिकनास्तिक ही अधिकतर पापी है; क्योंकि सदाचार्योपदेश इत्यादि से कदाचित् नास्तिक का सुधार होगा भी; परंतु किसी प्रकार आस्तिक-नास्तिक का सुधार कभी नहीं हो सकता। अतः प्रकृत गाथा में श्री स्वामीजी कहते हैं कि हमें सर्वथा इन दोनों का संग छोडकर, सदा आस्तिक का ही संग व सेवा करने में निरत होना चाहिए।)...(६८)

सत्संग की महिमा का वर्णन करना

नल्लमणमुळ्ळदोन्नै नण्णियिरुप्पदर्कु * नल्लमणमुण्डाम् नयमदु पोल् * नल्ल गुणमुडैयोर् तंगळुडन् कूडियिरुप्पार्कु * गुणमदुवेयाम् शेर्त्तिकोण्डु ॥६९॥

**आमोदवत्कुसुमसंवलनेन यद्वदामोदवान् भवति केशभरोऽप्यगन्धः।
तद्वद्भवन्ति गुणवज्जनसंगमेन वीता गुणैरपि जना गुणवन्त एव ॥६९॥**

आत्मकल्याण का प्रधान मार्ग सत्संग ही है।

(श्रीवचनभूषण दिव्यशास्त्र के ''प्रपन्नदिनचर्याप्रकरण'' में यह अर्थ बताया गया है, कि आत्मकल्याण का प्रधान मार्ग सत्संग ही है;

अत: प्रत्येक मुमुक्षु को ऐसे महात्मा सत्पुरुष का संग करना चाहिए, जो ज्ञानानुष्ठानसंपन्न हो और अपने (मुमुक्षु के) आत्मस्वरूप का विकास करा सकें; तथा ज्ञानानुष्ठानशून्य दुराचारी का संग छोड देना चाहिए जिससे आत्मा का अध:पतन हो । यह अर्थ इस गाथामें तथा आगे की गाथा में बताया जाता है। प्रकृत गाथा का तात्पर्य यह है) सुगंधि वस्तु का संग करने वाले पदार्थ को, (वह निर्गंध भी क्यों न हो, उस संसर्ग-बल से) सुगंध आ जाती है; इसी न्याय से सद्गुण शोभित महात्माओं का संग करनेवालों को भी उनके वे सद्गुण मिल जाते हैं।... (६९)

असत्संग की बुराई बताना

तीयगंधमुळ्ळदोन्नै चेर्न्दिरुप्पदोन्नुक्कु * तीयगंधमेरुम् तिरमदुपोल् * तीय गुणमुडैयोर् तंगळुडन् कूडियिरुप्पार्क्कु * गुणमदुवे याम् शेरिवु कोण्डु।।७०।।

यत्पूतिगन्धमिलनं समुपैति वस्तु
तत्पूतिगन्धमचिरादुपजायते हि ।
एतत्क्रमेण रमणीयगुणोऽपि लोके
निन्द्यान् गुणान् भजति निन्द्यगुणाश्रयेण ।।७०।।

दुर्जनों का संग सदैव के लिये छोड़ देना चाहिये।

दुर्गंधवाली वस्तु से मिले हुए पदार्थ को (वह स्वयं सुगंधि ही क्यों न हो, तो भी) जैसे वह दुर्गंध ही लग जाती है, इसी प्रकार दुर्गुणवालों से मिलनेवालों को भी उनके वे दुर्गुण ही आ जायेंगे । (अत: दुर्जनों का संग सदा दूर छोड देना चाहिए।)...(७०)

श्रीवचनभूषण की निंदा करनेवालों की मूर्खता बताना

मुन्नोर्मोऴिन्द मुरै तप्पामल् केट्टु * पिन्नोर्न्दु तामदनै प्पेशादे * तन्नेञ्जिल्
तोत्तिनदे शोल्लि इदु शुद्ध उपदेशवर वात्तदेन्बर् * मूर्खरावार् ।।।७१।।

प्राचां वचांसि सकलानि निशम्य सम्यक्
चित्तेन तान्यवहितेन निजेन मत्वा ।
नैवोपदिश्य कथयन्ति यथावभासं
शुद्धान्वयोऽयमिति ये बत ते हि मूर्खाः ।।७१।।

पूर्वाचार्यों से परंपरया उपदिष्ट सदर्थों को, सदाचार्यों के पास यथाक्रम सुन कर तथा अपने मन में उनका ठीक मनन कर फिर उसी के अनुसार (अर्थात् उन्हीं अर्थों का) प्रवचन न करते हुए, किंतु अपने मन में जो स्वतंत्र अर्थ सूझेगा, उसीका प्रवचन करते हुए जो यह भी दावा करेंगे कि ''ये ही सत्संप्रदाय परंपरा से प्राप्त अर्थ हैं'', ये लोग सत्य ही मूर्ख हैं। (विवरण - हमारे पूर्वाचार्यों की यह विशेषता है कि वे सदाचार्यपरंपरा-प्राप्त अर्थों का ही प्रवचन व प्रचार करते थे, नतु अपने स्वकपोलकल्पित किसी अर्थका । यह प्रामाणिकता ही उनकी श्रेष्ठता है। श्रीवचनभूषण भी ऐसा एक महान परमप्रामाणिक ग्रंथ है। परंतु कितने लोग यह प्रामाणिक मार्ग छोड, पंडित होने के अभिमान से, पूर्वाचार्यों के उपदेश पाने अथवा समझने में अशक्त होकर, अपने मन को जों लगें उसी अर्थ का प्रचार करते और श्रीवचनभूषण इत्यादि प्रामाणिक ग्रंथों की निंदा करते हुए, तदुपरांत यह भी दावा करते हैं कि, ''मैं जो कहता हूं, यही सदाचार्य परंपरागत अर्थ है।'' अब श्रीस्वामीजी कहते हैं कि ऐसे पंडितों को मूर्ख समझ कर उनका संग दूर छोड देना चाहिए; उनके साथ वादविवाद करने अथवा उन्हें समझाने का प्रयत्न करना भी व्यर्थ है।।)...(७१)

उपदेशों का उपसंहार करना

**पूर्वाचार्यर्हळ् बोधमनुष्ठानंगळ् * कूरुवार वार्तैहळैक्कोण्डु नीर् तेरि *
इरुळ् तरुमात्रालत्ते इन्बमुत्तुवाळुम् * तेरुळ् तरुमादेशिकनै च्चेन्दु ।।७२।।**

**प्राचां प्रबोधचरणे विमले गुरूणां ये व्याहरन्ति तदुदाहृतया पदव्या ।
प्रज्ञानिधिं गुरुवरं प्रतिपद्य लोका मोहास्पदे जगति संप्रति मोदिषीध्वम् ।।७२।।**

(हे आस्तिक जनो !) पूर्वाचार्यों के ज्ञान व अनुष्ठानों के प्रकार बतलाने में समर्थ महात्माओं की श्रीसूक्तियों की सहायता से आप लोग प्रसन्नचित्त होकर सदुपदेश देनेवाले आचार्य का आश्रयण कर, इस अज्ञानांधकारमय संसार में रहते हुए ही आनंदानुभव कर सन्मंगल पाओ । (विवरण - पूर्वोक्त मूर्खों का संग छोड हमारे पूर्वाचार्यों के श्रेष्ठ ज्ञान व परमविलक्षण सदाचारों का वर्णन करनेवाले साधु महात्माओं का सहवास करते हुए, उससे मन की नानाविध शंकारूप मलिनता दूर कर, प्रसन्नचित्त होकर, सत्संप्रदायनिष्ठ सदाचार्य के श्रीपादों का आश्रय लेकर, उनकी विशेष कृपा के पात्र होकर, उनसे सदर्थों का उपदेश पानेवालों को यह संसार मंडल, अज्ञानांधकार परिवृत नरक के सदृश कोई हेय स्थान प्रतीत न होगा; अपितु निरंतर भगवद्गुणानुभव व कैंकर्य करने का स्थान प्रतीत होने से परमपद से भी बढकर आनंददायक व मंगलकारक ही सिद्ध होगा । अतः तुम भी यही मार्ग अपनाकर आत्मकल्याण पाओ इस उपदेश के साथ श्री स्वामीजी अपने चरणाश्रित शिष्यजनों के लिए अपना उपदेश समाप्त करते हैं।...(७२)

फलश्रुति गाथा

**इन्द उपदेशरत्तिनमालै तन्नै * चिन्तै तनिळ् नाळुम् चिन्तिप्पार् * एन्दै
यतिराजर् इन्नरुळुक्केन्नुमिलक्काहि * शदिराग वाळ्न्दिडुवर् ताम् ।।७३।।**

बद्धां गुणैरनुगुणैरुपदेशरत्नमालाभिमां दधति ये हृदयेन नित्यम्।
अस्मद्गुरो र्यतिपते: करुणाप्रवाहपात्रीकृता: परमसंपदमाश्रयन्ते ।।७३ ।।

उपदेशरत्नमाला का अध्ययन करनेवाले महात्मा लोग इस संसार मण्डल में रहते हुये ''नित्यश्रीर्नित्यमंगलम'' के पात्र हो जायेंगे।

जो लोग प्रतिदिन अपने मन में उपदेशरत्नमाला नामक इस ग्रंथ का चिंतन करेंगे, वे सर्वदा हमारे गुरूजी श्री रामानुजाचार्य स्वामीजी की परम कृपाके पात्र होकर, किसी प्रकार की कमी के विना, सर्वसंपत् समृद्ध हो, परमानंद प्राप्त करेंगे। (विवरण - श्रीरामानुज स्वामीजी के भी आदरणीय, श्रेष्ठ अर्थ चुनकर बनायी हुई इस उपदेशरत्नमाला का अध्ययन करनेवाले उन स्वामीजी के कृपापात्र बनकर इस संसारमंडल में रहते हुए ही ''नित्यश्रीर्नित्यमंगलम्'' के पात्र हो जायेंगे । इस फलश्रुति के साथ यह दिव्यग्रंथ समाप्त किया गया ।...(७३)

इस ग्रंथ की अवतारिका में बताया गया कि इस ग्रंथ में चौहत्तर गाथाएं रचने का स्वामीजी का विचार था; परंतु उतने में उनके कई शिष्य लोगोंने इस ग्रंथ में श्री स्वामीजी की भी एक स्तुति मिलाने की इच्छा से भगवान से खूब प्रार्थना कर उनके द्वारा श्री स्वामीजी को केवल तिहत्तर गाथाएं रचने की आज्ञा दिलवायी । बाद में श्री स्वामीजी के प्रधान शिष्यों में से एक महात्मा ने एक गाथा रची; जिसका भी पाठ इस उपदेशरत्नमाला के साथ होने लगा; अर्थात् विशेष भगवदाज्ञा होने के कारण चौहत्तर पद्यवाले ग्रंथ का ही पाठ होने लगा है। वह पद्य यह है -

श्री वरवरमुनि स्वामीजी के श्रीपादुका स्पर्श का वैभव

मन्नुयिर्हाळिंगे मणवाळमामुनिवन् * पोन्नडियाम् शेंगमलप्पोदुगळै * उन्नि
च्चिरत्ताले तीण्डिल् अमानवनुम् नम्मै * करत्ताले तीण्डल् कडन् ।।७४।।

अंगानुषंगिपुरुषा रुचिरोपयन्तुरत्राभिलष्यपदरक्तसरोजसूने ।
सश्रद्धमात्मशिरसा यदि संस्पृशेम प्राप्तस्स नो ध्रुवममानवपाणिसंग:।।७४।।

हे मुमुक्षु चेतनो ! यदि हम इस संसार मंडल में रहते हुए श्री वरवरमुनि स्वामीजी के श्री पादारविंदों का (अर्थात् उनकी पादुका का) प्रेम पूर्वक अपने सिरसे स्पर्श करेंगे, तो ऐसे भाग्यवान् हमें अमानव का करस्पर्श पाने की भी आवश्यकता न रहेगी । (विवरण - शास्त्र कहता है कि अर्चिरादि मार्ग से परमपद जानेवाला चेतन जब इस प्रकृति मंडल को पार कर और विरजा नदी प्राप्त कर वहां स्नान करेगा, तब उसका सूक्ष्मशरीर निकल जायगा; और फिर विरजा के उस पार विराजमान ''अमानव'' नामक दिव्यपुरुष उसका स्पर्श करेगा; जब कि उसे विलक्षण अप्राकृत शुभविग्रह प्राप्त होगा और वह परमपद के समस्त भोगों का अधिकारी बनेगा । अब इस गाथा में यह अर्थ बताया जा रहा है कि जो मानव इस संसार में रहने के समय अपने सिर से श्री वरवरमुनि स्वामीजी के श्री चरणों का, अथवा उनकी श्रीपादुका का स्पर्श करने का भाग्य पायगा, उसे अमानवकरस्पर्श के विना ही परमपद के सभी भोग मिल जायेंगे ।

समस्त आळ्वारों तथा प्रधानतम आचार्यों के वैभव का वर्णन करनेवाले इस दिव्यग्रंथ में आचार्यसार्वभौम श्रीवरवरमुनि स्वामीजी का

भी वैभव यदि शामिल न हो तब इसकी बडी न्यूनता होगी । अतः इस आपत्ति का अवकाश न देते हुए प्रकृत गाथा रचकर इस ग्रंथ से मिलानेवाले आचार्यों ने यह बहुत ही उचित काम किया ।)...(७४)

श्रीवरवरमुनिस्वामीजी द्वारा विरचित उपदेशरत्नमाला, ''आचार्यपौत्र'' अभिरामवराचार्यस्वामीजी के रचे हुए संस्कृत अनुवाद तथा हिंदी अनुवान व टीका से युक्त समाप्त हुई ।।